Chap-4

चतुर्थ अध्याय

गुजरात के साठोत्तरी हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं प्रसार

साठोत्तरी गुजरात के हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ एवं प्रस्ताव

भारत वर्ष में अन्य राज्यों की दृष्टि से गुजरात अपेक्षाकृत कहीं अधिक उदार, स्वच्छन्द, प्रगतिशील और सम्पन्न राज्य है। वैचारिक धरातल पर भी यह प्रान्त विकसित सोच से सम्पृक्त एक जागरुक अध्यवसायी राज्य कहा जाता है।

साहित्य के लिए गुजरात एक उर्वरा भूमि रही है, जहाँ गुजराती भाषा के साथ साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी ने भी अत्यन्त आत्मीयता के साथ पाँव पसार कर अपना घर बनाया है। गुजरात में अनेक ऐसे सन्त, महात्मा, आचार्य एवं कवि हुए हैं, जिनका प्रभाव गुजरात से बाहर समग्र देश में प्रसरित हुआ है। अनेक ऐसे भी गुजराती हिन्दी साहित्यकार हुए हैं जिनके हिन्दी सृजन ने उन्हें राष्ट्रीय पहचान प्रदान की है तथा जो हिन्दीभाषी क्षेत्र में अपना वर्चस्व बनाकर रहे हैं। यहाँ के साहित्यकारों ने अपनी बहुआयामी रचनाधर्मिता से हिन्दी साहित्य का चतुर्दिक विकास एवं संवर्द्धन किया है। साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में यहाँ विपुल परिभरण में सृजन हुआ है।

आधुनिक काल में साठोत्तरी हिन्दी काव्य सृजन के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जितना समृद्ध और सम्पन्न साहित्य सृजन हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हुआ है, प्रायः सभी विधाओं में ऐसा ही समृद्ध साहित्य सृजन गुजरात में भी हुआ है।

डॉ. अम्बाशंकर नागर ने बड़े ही स्पष्ट रूप से गुजरात के आधुनिक साहित्य सृजन को रेखांकित करते हुए कहा है कि ''यह सुविदित तथ्य है कि आधुनिक काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती और महात्मा गाँधी के सत्यप्रयत्नों से हिन्दी भाषा को अखिल भारतीय लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। भाषावार प्रांत रचना के पश्चात् जब सब राज्यों की स्वभाषाएँ राज्य भाषाएँ बनीं, तब गुजरात की एक ऐसा राज्य है, जिसने गुजराती के साथ हिन्दी को भी अपनी द्वितीय राज्यभाषा के रूप में स्वीकार किया। गुजरात राज्य की भाषा विषयक इस उदार नीति के कारण यहाँ के स्कूल, कॉलेज और युनिवर्सिटियों में हिन्दी के पठन-पाठन को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है। गुजरात में आज आठ विश्वविद्यालय हैं और आठों में एम.ए. और पीएच.डी. तक हिन्दी के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था है। इन विश्वविद्यालयों से अब तक ४०० अनुसंधित्सु पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं और लगभग इतने ही शोधरत हैं। युनिवर्सिटियों के अतिरिक्त गुजरात विद्यापीठ और गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के द्वारा भी गुजरात के गाँव-गाँव और घर-घर तक हिन्दी पहुँची है। कहने का तात्पर्य यह कि हिन्दीतर प्रदेश होते हुए भी गुजरात में हिन्दी काव्य-रचना के लिए अनुकूल वातावरण था, जिसके कारण आधुनिक युग में हिन्दी कविता को पुष्पित-पल्लवित होने के लिए पर्याप्त अवकाश मिला है।

आजादी से पहले हिन्दी, हिन्दीभाषी प्रदेश की भाषा थी। उसके बाद भारतीय संविधान द्वारा राजभाषा के रूप में मान्य हो जाने के कारण अब वह सारे देश की संपर्क भाषा है। काश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कोहिमा तक वह परिव्याप्त है। देश की

सामासिक संस्कृति को व्यक्त करने वाली सशक्त राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी उभर रही है। हिन्दी के इसी अंतर्प्रांतीय रूप को गुजरात के परिप्रेक्ष्य में देखने का यह एक विनम्र प्रयास है।

गुजरात प्रदेश में पुराने समय से चली आ रही हिन्दी काव्य-परंपरा का अवलोकन कर चुकने के पश्चात् अब हम इस प्रदेश की समकालीन हिन्दी कविता पर विचार करेंगे।

आज की कविता के लिए कितने ही शब्द प्रचलित हैं, जैसे कि अर्वाचीन कविता, आधुनिक कविता, समसामयिक कविता, समकालीन कविता आदि। पर्यायवाची होते हुए भी इन काल सापेक्ष शब्दों की अवधारणाएँ भिन्न-भिन्न हैं। 'अर्वाचीन' शब्द कालवाचक है, जो प्राचीन नहीं, वह अर्वाचीन है। 'आधुनिक' में अंग्रेजी के 'मॉर्डन' शब्द की छाया है, किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहासों में आधुनिककाल भारतेन्दु से प्रारंभ होकर आज तक चल रहा है। कालवाची होने के साथ-साथ यह शब्द समाजवाची भी है। औद्योगीकरण और अर्थव्यवस्था भी इसमें समाविष्ट है। इसी प्रकार 'समकालीन' शब्द हम जिस काल में रह रहे हैं, उस काल के दो-चार दशकों का ही वाचक है, अतः हमने इनमें से 'समकालीन' शब्द को चुना है, क्योंकि यह शब्द उन सभी अर्थों को ध्वनित करता है जो अर्वाचीन और आधुनिक में गर्भित हैं। इसके अतिरिक्त यह गुजरात के कवियों की हिन्दी कविता पर पूरी तरह लागू भी होता है।

समकालीन हिन्दी कविता, भाषा और भावबोध की दृष्टि से अत्यंत संश्लिष्ट है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पुरानी कविता डिंगल, ब्रज, अवधी में होती थी। आधुनिक कला में आते-आते कविता खड़ी बोली में होने लगी। खड़ी बोली की राजभाषा बन जाने के पश्चात्, दिल्ली, मेरठ की भाषा न रहकर सारे देश की भाषा हो गई है। इसका स्वरूप प्रादेशिक प्रभावों के कारण तिलोत्तमा के रूप की तरह ऐसा विकसित हुआ

है कि जिसे देखकर हतप्रभ हुए बिना नहीं रहा जाता। प्रत्येक प्रदेश की समकालीन हिन्दी कविता की भाषा–भंगिमा अलग, मुहावरे–कहावतें अलग और बिम्ब–प्रतीक इतने संश्लिष्ट हैं कि जिन्हें दखकर ठगा–सा रह जाना पड़ता है। गुजरात के कवियों की हिन्दी कविता भी इसका अपवाद नहीं है। हिन्दी के इस आंतर भारती स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिए समसामयिक हिन्दी कविता एक अच्छा साधन है। यदि प्रत्येक हिन्दीतर प्रदेश की समकालीन हिन्दी कविता के संकलन प्रकाश में आएँ तो उनसे हिंदी के व्यापक स्वरूप के साथ भारत की सामासिक संस्कृति और इक्कीसवीं सदी की कविता के कथ्य और शिल्प के नए आयाम उजागर हो सकेंगे।

हिन्दीतर प्रदेशों में हिन्दी में कविता करने वाले कवि दो तरह के हैं। एक वे, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं हैं, दूसरे वे, जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और जो उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि हिन्दी भाषी राज्यों से हिन्दीतर प्रदेशों में आकर बसे हैं। काव्य–रचना में दोनों को ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

हिन्दी भाषी प्रदेशों से अहिन्दीभाषी प्रदेश में आकर बसे हिन्दी भाषियों की सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि वे हिन्दी भाषा–साहित्य की मुख्यधारा से कट जाते हैं। हिन्दीतर प्रदेशों में रहने के लिए आते समय, वे जिस भाषा–संपदा को अपने साथ लाते हैं, वह अंजुलि के जल की भाँति शनैः शनैः छीजती चली जाती है। उनकी भाषा में से पहले व्यंजना लुप्त होती है, फिर लक्षणा, शेष रह जाती है अभिधा। अभिधा से गद्य भले ही लिखा जा सकता हो, अच्छी कविता नहीं लिखी जा सकती। इन कठिनाइयों के बावजूद जो कवि संचार–माध्यमों के सहारे हिन्दी की मुख्यधारा से जुड़े रहकर प्रयत्नपूर्वक अपनी अंजुलि के जल को सहेज सके हैं, उनके अध्यवसाय की प्रशंसा की

जानी चाहिए। अंग्रेजी में ऐसे लेखन को 'डायस्फोरिक' संज्ञा से अभिहित किया जा रहा है और समकालीन लेखन में उसे अलग से विशेष महत्व दिया जा रहा है।

इसी तरह जो हिन्दीतर भाषा-भाषी सोचते स्वभाषा में हैं और लिखते हिन्दी में हैं, उनको भी कवि-कर्म में कठिनाई होती है। इस प्रक्रिया के कारण उनकी अभिव्यक्ति परिष्कृत होकर उत्कर्ष को भी प्राप्त हो सकती है और अपना सत्व खोकर निस्तेज और प्रभावहीन भी हो सकती है। एक भाषा में सोचना और दूसरी में लिखना कठिन काम है, जिसको इस संकलन के कवियों ने इस कौशल के साथ किया है कि उसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

हिन्दी की जिस मूलधारा की बात ऊपर की गई है, उसके संबंध में भी यहाँ कुछ कहना आवश्यक है। आदिकाल और मध्यकाल की दुर्गम घाटियों से होती हुई विकासोन्मुख हिन्दी काव्यधारा आधुनिक काल में प्रशस्त पथ पर अग्रसर हुई है। हिन्दी काव्यधारा का ब्रजभाषा से खड़ी बोली में रूपांतरित होना बीसवीं सदी की एक घटना है। इसी तरह भक्ति और श्रृंगार से मुक्त होकर हिन्दी कविता का समाजोन्मुख होना भी उसकी उल्लेखनीय उपलब्धि है। इस प्रकार भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से आधुनिक हिन्दी कविता ने अपने-आपको रूढ़ियों से मुक्त करके नए रूपों में ढाला है। स्वच्छंदतावाद, छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता से समकालीन कविता तक वह निरंतर अग्रसर होती रही है और अब इक्कीसवीं शताब्दी में पदार्पण करने के लिए कथ्य और शिल्प के नए रूप-आकारों में ढल रही है।

यह सही है कि हिन्दी कविता एक ओर परंपरा से जुड़ी हुई है, दूसरी ओर यह पाश्चात्य प्रभावों को भी निरंतर ग्रहण कर रही है। संस्कृत-प्राकृत की दुहिता होते हुए भी हिन्दी कविता को संस्कृत के वर्णवृत्त उसकी प्रकृति के अनुकूल प्रतीत नहीं हुए। जब तक

ब्रजभाषा, कविता का माध्यम रही, वर्णवृत्तों का थोड़ा बहुत प्रयोग होता रहा, किन्तु ब्रजी को अपदस्त करके जैसे ही खडी बोली काव्य भाषा बनी, उसे वर्णवृत्त रास नहीं आए, अतः उसने मात्रावृत्तों का अनुसरण किया। कालांतर में मात्रावृत्त भी उसे युगीन भावबोध की अभिव्यक्ति में साधक से अधिक बाधक प्रतीत होने लगे। परिणाम स्वरूप मात्रावृत्तों को छोडकर हिन्दी कविता ने अंग्रेजी के 'ब्लेंक वर्स' के अनुकरण पर मुक्त छंद को अपनाया। इस प्रकार समकालीन हिन्दी कविता का मूल स्वरूप अछांदस हो गया। अब पुनः नवगीत, नवग़जल, दोहे और हाइकु के रूप में हिन्दी काव्य-धारा छंदों की ओर लौट रही है।

छंदों की तरह अलंकारों का भी आधुनिक हिन्दी कविता ने परित्याग किया है। मध्यकालीन कविता-कामिनी छंद और अलंकारों के भार से इतनी दबी हुई थी कि काव्य-रसिकों का ध्यान छंदों की छटा और अलंकारों की जगमगाहट में ही उलझकर रह जाता था। कविता के वास्तविक सौंदर्य से काव्य-रसिक प्रायः वंचित रह जाते थे। आधुनिक काल में कविता ने छंदों की तरह अनावश्यक अलंकारों का भी परित्याग किया। बिम्ब और प्रतीकों से वह अपना श्रृंगार करने लगी। इसी सादगी ने समकालीन कविता को एक नया स्वरूप प्रदान किया।

जैसा कि हम प्रारंभ में कह आए हैं, 'आधुनिक' शब्द अत्यंत व्यापक है। वह कालवाचक भी है और प्रवृत्ति वाचक भी। हिन्दी साहित्य में इस शब्द का प्रयोग प्रायः सन् १८५७ ई. के पश्चात् लिखे गए आज तक के समस्त साहित्य के लिए होता है, किन्तु प्रवृत्ति की दृष्टि से आधुनिक साहित्य उसे ही कहा जायगा, जिसमें वैज्ञानिक और बौद्धिक दृष्टि निहित हो। अंग्रेजी की एक उक्ति है : 'ऑल कॉन्टेम्परेरीज आर नॉट मॉडर्न।' सभी समकालीन आधुनिक नहीं होते। इसी तरह पिछले डेढ़ सौ वर्षों में लिखा गया समस्त साहित्य आधुनिक नहीं कहा जा सकता। आधुनिक चेतना से युक्त साहित्य ही आधुनिक

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
201
M. S. University of Baroda

कहा जा सकता है। इसी अर्थव्याप्ति से बचने के लिए हमने 'आधुनिक' या 'अर्वाचीन' के स्थान पर 'समकालीन' शब्द का प्रयोग समसामयिक कविता के लिए किया है। हिन्दी कविता की मूलधारा में स्वतंत्रता के स्वर्णिम विहान में ही हम आधुनिक चेतना को उदित होता देखते हैं। यह चेतना पूववर्ती स्वच्छंतावाद, छायावाद, प्रगतिवाद से प्रयोगवाद और नयी कविता के रूप में अग्रसर होती हुई आज की कविता तक पहुँची है। इस अवलोकन से स्पष्ट है कि आधुनिकता केवल काल सापेक्ष नहीं, वह प्रवृत्ति सापेक्ष विकासशील प्रक्रिया है, जिसका विकास भारत में स्वातंत्र्योत्तर युग में हुआ है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में कविता के इस कालखंड को 'पोस्ट कोलोनियल' कहा गया है, जिसमें राजनैतिक गुलामी से मुक्त होने के बाद मानसिक गुलामी से मुक्ति की कविताएँ लिखी जा रही हैं।''[१]

वैसे तो साठोत्तरी काल में गुजरात के शताधिक हिन्दी साहित्यकार अपने कृतित्व के साथ चर्चित हो चुके हैं किन्तु कुछ विशिष्ट हस्ताक्षरों ने अपने लेखन से समग्र देश का ध्यान भी गुजरात की ओर आकृष्ट किया है। ऐसे स्थापित एवं वरिष्ठ साहित्यकारों में डॉ. अम्बाशंकर नागर, अविनाश श्रीवास्तव, डॉ. कमल पुंजाणी, डॉ. किशोर काबरा, घनश्याम अग्रवाल, दयाचन्द जैन, द्वारकाप्रसाद सॉचीहर, नलिनी पुरोहित, निर्मला असनानी, भगवत शरण अग्रवाल, भगवान दास जैन, भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज', रमाकांत शर्मा, रामकुमार गुप्त, डॉ. विष्णु विराट, सुधा श्रीवास्तव, सुलतान अहमद, आ. रघुनाथ भट्ट, डॉ. महावीर चौहान, डॉ. भँवरलाल गुर्जर, विष्णु प्रसाद ओझा, डॉ. मालती दुबे, डॉ. ओमप्रकाश गुप्त, डॉ. भगवान दास कहार, डॉ. आलोक गुप्त आदि का उल्लेखनीय स्थान हैं, जिन्होंने अपने वरिष्ठ लेखन से हिन्दी साहित्य सृजन में अपनी विशिष्ट पहचान बताई है।

डॉ. महावीर सिंह चौहान ने गुजरात की आधुनिक हिन्दी काव्य रचना के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है– ''अनुभव और अभिव्यक्ति की वैयक्तिता सृजनशीलता की अनिवार्य शर्त है जिसका गुजरात के समकालीन हिन्दी कवि ने निर्वाह किया है। इस सिलसिले में कवियों की रचनाशीलता पर बात की जा सकती है।

रमाकांत शर्मा के लिए कवि होना आदमी होने से भिन्न नहीं है। उनके लेख 'आदमी का आदमी होना' अपने आप में एक बड़ा दायित्व है।... **'मैं एक आदमी हूँ / सबके आँसुओं, मुस्कराहटों को / ढोते सही जगह पहुँचने की / जिम्मेदारी मेरी है।'**[२] वे जानते हैं कि मनुष्य होने का दायित्व एक नैतिक दायित्व है लेकिन मनुष्य में बहुत कुछ ऐसा भी है जो उसकी शक्ति न होकर उसकी सीमा है। उस सीमा की पहचान में ही कहीं कविता के अंकुर आकर ग्रहण करते हैं। यह दृश्य भी रमाकांत शर्मा की दृष्टि से ओझिल नहीं होता, जब वे कहते हैं – **'हमारी थकी आँखों में / सूरज डूबने लगा है / महकते प्रकाश की जगह / अँधेरा छाने लगा / आकाश धीरे–धीरे / घुलता जा रहा है आकाश में।'**[३]

अम्बाशंकर नागर का युग–बोध उस काल–संक्रमण के अन्तर्विरोधों के बीच संक्रमण करता है जिसमें आधुनिकता अपनी संवेदनहीनता की मरुभूमि का विस्तार कर रही है, जहाँ जीवन के नाम पर जो कुछ आकार ग्रहण कर रहा है, वह नागफनी जैसी कँटीली वनस्पतियाँ की अंतहीन व्याप्ति है। लेकिन इस आधुनिकता के जीवन के सहज सौन्दर्य तथा आत्मीय संबंधों की द्रष्टि को एकांतिक रूप से उन्मूलित नहीं कर दिया। जीवन में अभी भी सुगंध की लहर की अनुभूतियों का ग्रहम करने में सक्षम है। लेकिन इसके बावजूद कवि अनुभव करता है कि समय अपनी प्रतिकूलता की छाप छोड़े बिना नहीं रहता, और उसके सामने वह अपने आपको एकदम असमर्थ पाता है – **'जानता हूँ**

/ कहीं कोई अंग / उधड़ा रह गया है / और वह सर्द पड़ता जा रहा है: / ढँक नहीं पाता जिसे मैं।'[४]

भगवतशरण अग्रवाल की कविता एक बौद्धिक रूप से जागरूक व्यक्ति की संवेदनशीलता से जन्म लेती है। उनमें भावुकता है, लेकिन वे उसमें बह नहीं जाते। यही कारण है कि वे जिस भाषा में वे अपनी आत्माभिव्यक्ति करते हैं उसके इतिहास को, या उसके साथ जुड़े अर्थअनुषंगों को जान लेना जरूरी समझते हैं – **'चूल्हे के धुएँ से काले हो माँ की आँखों से टपकते शब्द। कुंडी खटखटाते भीख मांगते शब्द। धर्मस्थान पर पंडे बन मूर्ख बनाते शब्द।' संवेदनात्मक अन्वेषणशीलता भगवतशरण अग्रवाल की कविता का केन्द्रीय तत्व है।**[५]

अविनास श्रीवास्तव में भावनाओं की तीव्र आवेगशीतला है जिसमें वे आत्मालोचन के स्तर पर अपने आपको पहचानने का प्रयत्न करते हैं। जयसिंह व्यथित की कविता इतिहास और पुराण के पात्रों के जीवन में अंतर्निहित आदर्शों को पहचानने और उन्हें जन-जीवन तक पहुँचाने की एक कारगर कोशिश है। रामकुमार गुप्त की कविता में औद्योगिक युग के उस मनुष्य की त्रासदी का इतिहास जो नए आकाश की अनंतता में पंख फैलाकर देखता है वह मेघ मालाएँ न होकर धुएँ का धुंधलका और घुटन है। 'साँचीहर' में अपनी रचनाशीलता के प्रति गहरी आत्म सजगता है। वह चाहे दायित्व बोध हो, या मानवीय प्रतिबद्धता उसकी कविता में आएगा तो कविता की शर्तों पर आएगा। उनके आत्म साक्षात्कार में अमूर्तिकरण की महती भूमिका है। वसंतकुमार परिहार की कविता में सामाजिक सजगता के उसके पास आज भी असंगतियों और अंतर्विरोधों के अनुभूत तथ्य होते हैं, लोगों के वास्तविक इरादों की वह तक पहुँचने की पारदर्शी दृष्टि होती है, व्यवस्था के चीर दरवाजों के बावजूद पहचान होती है, लेकिन सबसे बड़ी बात

यह है कि उनके पास इन सबका अपनी कविता में उपयोग करने का एक रचनात्मक सलीका है। वे मानवीय प्रतिबद्धता के कवि हैं।

गुजरात का कवि अपनी मिट्टी से जुडा हुआ कवि है। यही कारण है कि उसमे अपने परिवेश के प्रति गहरी आत्म सजगता है। उनके परिवेश की हर हलचल उसके विचार और संवेदन को आंदोलित किए बिना नहीं रहता। यही कारण है कि गुजरात में साम्प्रदायिकता की दानावल की आग ने उसके अंगों को भी झुलसाया है। भगवानदास जैन ने साम्प्रदायिकता का जहर फैलाने वाले मानव हत्यारों से सवाल किया –

मौत के सौदागरों में पूछता हूँ कब तलक

यूँ चलेगा रक्त का व्यापार पर उत्तर नहीं।[६]

सुल्तान अहमद ने इस दहशत भरे षड्यंत्र के बाहरी और भीतरी प्रभावों का जो वर्णन किया है, उसमें व्यक्त होनेवाली कसक हृदय को गहरे तक छूती है –

इनको हम लेके भटकते हैं सिरों पर अपने

कितने बेजोड़ हैं किस्मत के लिखे घर अपने।[७]

इनकी लंबी कविता 'दीवार के इधर–उधर' में साम्प्रदायिकता की समस्या को व्यापक, सामाजिक राजनीतिक फलक पर उठाया गया है। इसमें इनकी संवेदना के साथ दूसरी सोच भी शामिल है। सुलतान जैसे मार्क्सवादी सोच के कवि के लिए इस त्रासदी की जड़ें वर्गीय विषमता में हैं। इस सिलसिले में फूलचंद गुप्त की कविता 'हे राम !' को बी नहीं भुलाया जा सकता है। जिसमें कवि ने बताया है कि साम्प्रदायिकता मात्र मनुष्य की ही नहीं बल्कि मनुष्यता की मानव मूल्यों की भी शत्रु है। मूल्यों के विनाश में सांस्कृतिक

चेतना के विनाश के बीज होते हैं। अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कट जानेवाले आदमी और पशु में अंतर ही क्या रह जाएगा?

कच्छ के भूकंप के हादसे को गुजरात कभी नहीं भूल सकता। इस त्रासदी की पीड़ा को आलोक गुप्त ने अपनी एक कविता 'खंडहरों का शहर नहीं है भचाऊ' (वागर्थ, अंक ७३) में अंकित किया है। वस्तुतः इस कविता में गुजरात की पीड़ा के साथ गुजरात की उस अपराजेय जिजीविषा के भी दर्शन होते हैं, जिसका परिचय गुजरात ने हर संकट का सामना करते हुए दिया है। देखें एक शब्द चित्र – कच्छ की जीवन चेतना का – **'खंड़हरों पर बाँध ली गई हैं झुग्गियाँ? पत्थर पर तकिया लगाकर लेटा है कच्छी भांड़ु !'**[८]

किशोर काबरा की रचनाशीलता का श्रेष्ठतम अंश उनकी प्रबंध रचनाओं में प्रकट हुआ है। अपनी संवेदना और अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने मिथ कथाओं का आधार ग्रहण किया है। वस्तुतः मिथ कथाओं का अपना एक स्वायत्त संसार होता है। उसमें जातीय जीवन की मूल्यवान स्मृतियाँ संचित होती हैं। इनके बीच ही रचनाकार अपनी निजी सोच और संवेदना का प्रत्यारोपण करता है। किशोर काबरा ने भी पुराण कथाओं का अपने संवेदनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग किया है। उनकी दो प्रबंध रचनाओं 'उत्तर महाभारत' और 'उत्तर रामायण' में कवि ने महानायकों की कथा का वर्णन किया है। लेकिन 'उत्तर महाभारत' के पाण्डव अपना आत्म–विश्लेषण करते हुए अपने जीवन की आंतरिक रिक्तता का दर्शन कराते हैं। 'उत्तर रामायण' के राम के प्रति कवि में विशेष सहानुभूति है, लेकिन वह सीता–निष्कासन का कोई औचित्य नहीं खोज पाता। सीता के समक्ष लक्ष्मण अपनी जिस विडंबना की ओर संकेत करते हैं, वह जितनी मार्मिक है, उतनी ही उत्तेजनापूर्ण –

बड़ा परतंत्र हूँ भाभी, किसी का मंत्र हूँ भाभी

अयोध्या के प्रदूषित तंत्र का षड्यंत्र हूँ भाभी।[९]

वस्तुतः पांडवों या लक्ष्मण के जीवन का यह विघटन बहुत कुछ कवि के अपने युग के व्यापक विघटन का संकेत देता है।

गुजरात के कवियों में 'हाइकु' एक लोकप्रिय विधा रही है। विचार और रचना के स्तर पर इसे लोकप्रिय बनाने में भगवतशरण अग्रवाल की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही है। अपनी हाइकु लेखन को लगभग एक आंदोलन का रूप दे दिया है। यदि 'हाइकु' जैसी लघु विधा के माध्यम से रचनात्मक शब्द की अर्थवत्ता की तलाश की जा सकती है, तो हाइकू–लेखन का स्वागत किया जाना चाहिए। अपने हाइकू संग्रह 'अर्घ्य' की भूमिका में वे लिखते हैं – 'हाइकू द्वारा तो केवल एक–दो संकेतों या बिंबों के माध्यम से किसी एक दृश्य रेखा के सौंदर्य या किसी विशेष मनोभाव को उभारना भर होता है। रघुनाथ भट्ट ने 'हाइकू' के विदेशीपन को अधिक अहमियत नहीं दी। वे संस्कृत की सूत्र शैली को अपनी संक्षिप्तता में बेजोड़ मानते हैं। इसे एक संयोग ही कहा जाएगा कि दोनों कवियों के हाइकु संवेदनशीलता और अर्थगत चमत्कृति से दीप्त हो उठे हैं।[१०]

जिस प्रकार हिन्दी कविता में यहाँ गीत, हाइकू, मुक्तक, छन्द आदि स्फुट काव्य–सृजन की अविधारा अग्रसरित हुई इसी प्रकार यहाँ प्रबंध काव्यों के सृजन की भी समृद्ध परम्परा रही है।

डॉ. कविता शर्मा 'जदली' कहती हैं कि गुजरात के वर्तमान हिन्दी कवियों ने हमें अनेक मिथकीय प्रबंधकाव्य दिए हैं। डॉ. अम्बाशकर नागर कृत 'प्राम्लोचा', डॉ. किशोर काबरा कृत 'उत्तर रामायण', 'परिताप के पाँच क्षण', 'नरो वा कुंजरो वा', 'धनुषभंग', जयसिंह 'व्यथित' कृत 'आर्तनाद', 'राघवेन्द्र', 'बालकृष्ण', 'कैकयी के राम', 'दलितों

का मसीहा', राजेन्द्र काजल रचित 'चौलादेवी', विष्णु विराट कृत 'कर्ण', भागवतप्रसाद मिश्र की 'कारा', 'कस्मै देवाय' आदि प्रबंध रचनाएँ हैं। इनके कवियों ने राम, कृष्ण जैसे दैवीय पात्रों को अपने काव्य का उपजीव्य बनाया है तथा दूसरी ओर महाभारत के पात्रो और घटनाचक्र को नये ढंग से अनुप्राणित किया है। ऐतिहासिक पात्र चौलादेवी और बाबा साहेब आम्बेडकर को लिखा है। इस प्रकार परम्परागत वस्तु को नूतन अभिगम और विन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

प्रम्लोचा :

'प्रम्लोचा' डॉ. अम्बाशंकर नागर का १९९५ में लिखा मिथकीय प्रबंधकाव्य है। पुराणों में वर्णित कुंड ऋषि और प्रम्लोचा अप्सरा की प्रेमकथा इसका मुख्य आधार है। कुंड ऋषि के प्रखर तप से भयभीत हो देवराज इन्द्र ऋषि का तप भंग करने के लिए प्रम्लोचा को भेजते हैं। ऋषि उसके रूप माधुर्य पर मुग्ध होकर आठ सहस्त्र वर्ष तक मोहपाश में बंधे रहे। एक दिन सूर्यास्त का दृश्य देखकर ऋषि को प्रत्यभिज्ञान हुआ और मोहभंग होने के बाद पश्चाताप से पीड़ित होकर उन्होंने घोर तप कर मोक्ष प्राप्त किया। 'प्रम्लोचा' प्रबंध काव्य की कथा मिथक के रूप में है पर कथ्य कवि का अपना है। कवि के शब्दों में 'पात्र और स्थानों के नामों को छोड़कर इसमें कुछ भी पौराणिक नहीं है। मिथक अवश्य पौराणिक है, किन्तु उसे भी इस काव्य में युगीन अर्थवत्ता और आधुनिक भंगिमा के साथ प्रस्तुत किया गया है।' इसकी कथा का अधिकांश भाग पुराण से समन्वित है। तथापित कवि का वैभव मौलिक सूझ का परिचायक है।

'प्रम्लोचा' में प्रत्येक सर्ग के पूर्व ब्रह्मपुराण के श्लोक चित्रों के साथ दिए हैं। 'प्रादुर्भाव' का कथानक ब्रह्मपुराण एवं विष्णुपुराण के पौराणिक आख्यान पर आधारित है। 'प्रणय' में श्रृंगार निरूपण एवं गीतों की योजना मौलिक प्रतिभा की देन है। 'प्रत्यभिज्ञान'

में पुराण की कथा में आधुनिक भंगिमा के तेवर हैं। समग्र प्रबंध काव्य प्रादुर्भाव, प्रणय और प्रत्यभिज्ञान जैसे तीन सर्गों में लिपिबद्ध है। इस छोटी-सी मिथक कथा को कवि ने अपनी भावनाओ एवं सवेदनाओं के ताने-बाने से बुनकर नया कलेवर प्रदान किया है। इस मिथकीय खण्डकाव्य के पात्र आधुनिकता के रंग में रंगे हुए हैं। पौराणिक नायक-नायिका के गृहस्थ जीवन के माध्यम से आधुनिक जीवनधारा के विविध आयामों पर गहराई से प्रकाश डाला है। प्रम्लोचा पौराणिक अप्सरा होते हुए भी आधुनिक नारी की सजगता की प्रतीक है।

कवि ने पुराण कथा के कुछ प्रसंगों में परिवर्तन अवश्य किया है, जिन्हें अपनी कल्पना से नवीन एवं कथ्यानुरूप बनाया है। 'प्रत्यभिज्ञान' की घटना का वर्णन विष्णुपुराण की तरह 'प्रम्लोचा' में भी है, मात्रा कालावधि में अंतर है। प्रत्यभिज्ञान होने पर मुनि का स्वयं को धिक्कारना एवं प्राम्लोचा को प्रताड़ित करना आदि घटनाएँ पुराण में वर्णित कथा के अनुरूप हैं, जिसमें कवि का कल्पना-वैभव देखा ज़ा सकता है। पुराण के कण्डुकोपाख्यान का उद्देश्य पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य बताना रहा है, लेकिन 'प्राम्लोचा' मिथकीय काव्य का प्रयोजन मानव के संस्कारों की महत्ता बताना है। पुराणों में तपक्षीण कण्डु मुनि प्रत्यभिज्ञान होने के बाद फिर से पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाकर कठोर तप करते हैं, जबकि 'प्रम्लोचा' में उन्हें राष्ट्र का अधिनायक बताकर सृष्टि के संचालन हित प्रवृत्त किया है।

'प्रम्लोचा' की समग्र कथा संरचना प्रतीकों द्वारा निर्मित हुई है। कथा की रचना का हर मोड़ एवं पात्र प्रतीक के रूप में है। कण्डु मुनि आधुनिक पुरुष का एवं प्राम्लोचा आधुनिक नारी की प्रतीक है। 'मारिषाफ् सृष्टि के विकास की प्रतीक है। सृष्टि के विकास की यह पुराण कथा 'प्रम्लोचा' में प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुई है। 'यह वसुधा है / एक

नीड़ / पखेरू हैं सब इसके / सब से हिलमिल कर रहो / धरा को स्वर्ग बनाओ / 'वसुधैव कुटुंबकम् के / बीज मंत्र को जपो तपस्वी।' इस प्रतीक में नैतिक बोध है। इसमे कण्डु को एक अन्तहीन मानव-जिज्ञासा का प्रतीक बतलाया है। प्रम्लोचा और कण्डु की पुत्री मारीषा मानव भविष्य की सूत्रधारिणी की प्रतीक है। कवि के लिए यह क़था भी एक प्रतीक मात्र है। केवल तप से सर्जना नहीं हो सकती। सर्जना और सृष्टि के लिए मधुर प्रणय आवश्यक है। इस दृष्टि से मानवीय मनोभूमि में मिथकीय तत्व रहा है। 'प्रम्लोचा' में इस मिथकीय तत्व का प्रतीकात्मक उपयोग हुआ है। यह प्रबंधकाव्य युगीन अर्थवत्ता और आधुनिकता के कारण रसात्मक एवं कलात्मक है। 'प्रम्लोचा' में कण्डु आधुनिक पुरूष के प्रतीक के रूप में आते हैं।

प्रम्लोचा पौराणिक अप्सरा होते हुए भी अपनी स्वतंत्रता स्थापित करती है। वह पुरुष की शक्ति है। वह आज की जागृत नारी है। इसलिए वह कहती है – 'छिन्न करो / अब अपनी / सब कुंठाएँ / उन्मुक्त करो / अन्तर से रूद्र द्वार / व्यष्टि-साधना छोड़ / समष्टि हित तपो तपस्वी।' प्रम्लोचा अपने पौराणिक रूप से अलग हटकर उदात्त, प्रखर और तत्व वेत्ती रूप में आयी हैं। उसमें आधुनिक स्वर मुखर है। प्रम्लोचा को देखते ही कण्डु मुनि अपनी सारी सिद्धियों को उसके चरणों में समर्पित करके भोगोपासना में लीन हो जाते हैं। कवि मुनि के पतन को अर्ध्यपात्र गिरने की प्रतीकात्मक स्थिति से व्यक्त करते हैं। जब मुनि की चेतना जाग्रत होती है, तब उनकी चेतना को प्रम्लोचा 'चिनगारी' के प्रतीक द्वारा उद्घाटित करती है।

कवि ने अनेक स्थानों पर मार्मिक गुह्य संकेतों का नियोजन किया है – 'जैसे ही मुनि ने भरा / प्रिया को अंग में / पंख फडफड़ाती तरु की फुनगी से / सहसा उडी गगन में चकबी।' यह चकई मुनि को दी जानेवाली उनके पतन की नियति की चेतावनी

की प्रतीक है। कवि ने बिम्ब और प्रतीक के माध्यम से स्वप्न के द्वारा भोग की अनिवार्यता की ओर संकेत किया है। मुनि स्वप्न में व्याघ्र के द्वारा हंसिनी को जल में पडकर ले जाने का दृश्य देखते हैं, जो आगामी घटना का संकेत है। मुनि व्याघ्र के रूप में इन्द्र को एवं हंसिनी को प्रम्लोचा के प्रतीक के रूप में देखते हैं। जिसमें प्रम्लोचा का पुनः स्वर्ग में लौट जाने की घटना का संकेत है। मुनि को प्रत्यभिज्ञान हो जाने के बाद आत्मग्लानि होती है तब प्रम्लोचा उन्हें ज्ञानबोध कराते हुए औपनिषदिक प्रतीकों के माध्यम से कहती है– 'आत्मा रथी है / रथ है शरीर / सारथी है बुद्धि / इन्द्रियों के घोड़े हैं / जो मन की वल्गाओं / के वशवर्ती हैं।' कवि ने भावी घटनाओं को सांकेतिकता के रूप में दिया है। कण्डु और प्रम्लोचा के प्रथम मिलन के पूर्व सूर्योदय का होना, मिलन के समय चकई का उड़ना, काले–सफेद धागों से दो बूढ़िओं द्वारा कालपट बुना जाना, कण्डु का स्वप्न दर्शन आदि पूरी कथा के घटनाक्रम को जोड़ते हुए प्रतीकों में अपनी बात कहते हैं।

कवि का कल्पना वैभव बिम्बों के माध्यम से निखरा है। दृश्य–श्राव्य, स्वाद्य, स्पार्श्य और घ्राणीय बिम्बों के द्वारा कहीं अर्थ को गहराया है तो कहीं अर्थ को उद्दीपन किया है। ये बिम्ब सहज, स्वाभाविक और मनोहर है। 'गंध वाही कुन्तलों को / ग्रथित कर अरविंद से / चन्द्रोज्ज्वल फलित कपोलों को / मल लोध्र–रेणु से / सघन स्निग्ध जंघाओं पर / उबटन रच कर मकरंद से / रूप की, यह दूध धोई चांदनी / बदल देती है / स्वरूपों को प्रकृति के / अर्थ देती है नए / जीवन ऋचा को।' रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श की अनुभूतियों का अमूर्त बिम्ब देखिए – 'स्पर्श / देह की भाषा है / ऐसी भाषा / जिसमें देश काल का भी / व्यवधान नहीं है / विश्व भाषा है यह / मानव व्यापारों की / जिसमें रुधिर बोलता और / त्वचा सुनती है।'

'प्रम्लोचा' में दृश्य बिम्ब और नाद बिम्ब सविशेष है। काम-वीणा, मन-मुक्ता, मन-मृग, देह-पुर, कूप-ध्वनि, पंचवटी नारी, पंचतपा पुरुष, तन्वंगी तिलोत्तमा, समशीतोष्णानुभूति, हेमन्त प्रदाणुत मति, रूप की दूध-धोई चाँदनी, मुँहलगे भृत्य-सा पावन आदि में बिम्ब योजना देखी जा सकती है। इस प्रकार कवि का कल्पना वैभव बिम्बों के माध्यम से उजागर हुआ है। कण्डु-प्रम्लोचा का चित्र संचारियों के साथ रूपायित है। इसमें श्रृंगार की सूक्ष्म रोमानी अनुभूति सहज रूप में सूक्ष्म कोमल रंगीन बिम्बों में खिल उठी है – 'प्रहर्षित मुनि / निमिष मात्र में / सघन कुंज के बीच, उटज में / सहसा अंतर्लीन हो गये / मानो मीन-मिथुन / क्रीड़ा रत थे जो / तटवर्ती जल में अब तक / कुछ गहन जल की धारा में / छप से कहीं विलीन हो गए।' ऐसे अनेक अमूर्त भावों को शब्दों के रूप रंग रेखाओं से बाँधने का सफल प्रयोग किया गया है।

परिताप के पाँच क्षण (१९७९) :

डॉ. किशोर काबरा का यह प्रबंध काव्य महाभारत पर आधारित है, जिसे उन्होंने वर्तमान से जोड़ा है। इसमें भीष्म पितामह के चरित्र को मनोवैज्ञानिक रूप से बतलाते हुए उनकी प्रतिज्ञा पर एक प्रश्नचिन्ह लगाया गया है। कवि ने रणक्षेत्र में बाणशय्या पर लेटे भीष्म की अर्द्धचेतनावस्था की प्रस्तुति में मनोविज्ञान का सहारा लिया है। कवि का कहना है 'परिताप के पाँच क्षण' आरोपित ब्रह्मचर्य एवं अतृप्त नारीत्व के संघर्ष की कथा है।' विवाह न करने की भीष्म प्रतिज्ञा के फलस्वरूप जो वेदना और मनस्ताप उत्पन्न होता है, उसकी घुटन और पीड़ा को दिखलाया गया है। कवि ने भीष्म की अपराध चेतना को प्रश्नों के रूप में उभारा है, भीष्म अम्बा के प्रति किये अन्याय से क्षुब्ध और परेशान हैं। यातना और परिताप के ये पाँच क्षण उनके लिए आत्मदर्शन और युगदर्शन के क्षण बन जाते हैं।

भीष्म के मानस–पटल पर अतीत की प्रत्येक घटना एक–एक कर उभरकर आती है। आत्मदाह उन्हें मथता है। तीनों राजकुमारियों का अपहरण, उनकी अतृप्त यौनाकांक्षाएँ आदि भीष्म को धिक्कारती हैं। प्रथम क्षण में भीष्म की दग्ध अतर व्यथा का निरूपण है। इसमें नारी अपमान के प्रश्न को उठाया गया है। दूसरे क्षण में मनुष्य की वासना के मनोवैज्ञानिक मंच को प्रस्तुत किया गया है। तीसरे क्षण में भीष्म और अम्बा का संवाद है। चौथे क्षण में अम्बा का प्रतिशोध शिखण्डी के रूप में आया है और पाँचवें क्षण में भीष्म अपनी मनोव्यथा अर्जुन के समक्ष प्रकट करते हैं – 'पार्थ / मैंने पाप हाथों से नहीं / हर वक्त आँखों से किया है। / मैं भरे दरबार में / आँखें गड़ाकर नग्न होती द्रौपदी को देखने में मग्न था।' इस प्रकार अम्बा का आक्रोश और भीष्म का परिताप इस प्रबंध में उभरकर आया है।

इस प्रबंध काव्य में कवि ने भीष्म और अम्बा को मिथक के रूप में लिया है। भीष्म युग पुरुष हैं, जो अभावों से ग्रस्त हो व्यथित होते हैं। नर–नारी से ही सृष्टि होती है, इससे पलायन ही विषद् पीड़ा को जन्म देता है और परिताप मानव का स्वभाव है। कवि ने भीष्म के माध्यम से वर्तमान की कुंठाग्रस्त नई पीढी के सपनों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। भीष्म ने अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्य के लिए अम्बालिका, अम्बिका और अम्बा का अपहरण किया था। अम्बालिका और अम्बिका को नियोग पद्धति से क्रमशः प्राप्त हुए पाण्डुरोग ग्रस्त एवं अन्धा पुत्र। अम्बा आजन्म प्रणय एवं प्रतिशोध की आग में जलती रही। इसीलिए वह कहती है – 'यौवनोन्मुख प्रणय का हत्यांग / प्रण के ज्वाल में तुमने जलाया था / तुम्हारे मरण को मैं आज पश्चाताप की / दुर्दांत भट्टी में जलाऊँगी।' भीष्म शरशय्या पर इसी प्रतिज्ञा का स्मरण करते हैं। अम्बा भीष्म के त्यागे जाने पर कहीं

पर कहीं की नहीं रही। शिखण्डी इसी अम्बा के इन उभयलिंगी मनोभावों का घनीभूत प्रतीक है।

कवि ने अम्ब के चरित्र में नारी के कई बिम्ब देखे हैं। जिनमें भोली बालिका, मुग्धा युवती, समर्पित प्रेयसी तथा विद्रोहिणी और प्रतिशोध लेनेवाली नारी के रूप में विद्यमान हैं। 'अपनी प्रतिज्ञा के / कँटीले रोगी धतूरे को जिलाने के लिए / एक नारी की / सुनहरी चाँदनी / निर्दोष झीलों के / नरम मोती चुरा कर / वंश के निर्वंश बगुले को / खिलाना चाहते हो?' इस प्रकार के अनेक बिम्ब देखे जा सकते हैं। वृद्ध पिता की वासना सृष्टि के लिए अल्पवय पुत्र द्वारा सुखी भविष्य की संभावना से मुख मोड़ लिए जाने को कवि ने सादृश्यान्वेषी कल्पना के सहारे अभिव्यक्ति प्रदान की है – 'हाय रोगी जीर्ण सूखे पुष्प की / गिरती लटकती पंखुरियों को थामने / मेरी सुकोमल अधखिली कलिका / वचन के तीक्ष्ण बाणों से बिखरकर रह गयी।'

इस प्रकार कवि ने मिथक प्रतीक एवं बिम्ब के माध्यम से इस कथा को बड़े ही चिंतन और वेदना के क्षणों में डूबकर अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से समसामयिक परिवेश में मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। इसमें भीष्म और अम्बा के मिथक द्वारा नर–नारी के नैसर्गिक साहचर्य भाव की यथार्थता को प्रस्तुत किया गया है।

धनुषभंग (१९८२) :

डॉ. किशोर काबरा कृत 'धनुषभंग' की कथा पौराणिक कथा पर आधारित है, जिसे प्रतीकात्मक ढंग से बतलाया गया है। कवि ने एक क्षण की अनुभूति को कथाबद्ध रूप में पिरोया है तथा इसे एक क्षण का खण्डकाव्य कहा है। राम के गले में जयमाला पहनाने के पूर्व सीता अपने मन में न जाने कितने भावों को सजाए खड़ी थी। एक पल के लिए पलकें झपकाने की क्रिया को कवि ने काव्य प्रयुक्ति के रूप मे लिया है। इसी क्षण में

जनक के पूर्वज निमि सीता की पलकों पर आ बैठते हैं और इक्कीस पीढ़ियों से चली आ रही धनुष एवं हल की कहानी को प्रतीकों में कहते हैं। कथा के अंत में पलकों पर बैठे निमि का स्वप्न सार्थक होता है और सीता की स्वप्निल अवस्था भंग होती है। सीता के हाथ की जयमाला राम के गले में गिरकर समस्त चिंतन को फलीभूत कर देती है। सीता के द्वारा भोगे गए इस क्षण को कवि ने त्रिविध द्वन्द्व से जोड़कर युगीन संदर्भों को अभिव्यक्ति दी है। कवि ने इस मिथक द्वारा भोगे गए पल की कथा को शास्त्र, शस्त्र एवं श्रम के द्वन्द्व से जोड़कर कृषि संस्कृति के शाश्वत दर्शन को प्रस्तुत किया है।

निमि की कथा रोचक और मिथकीय तत्व से भरपूर है। निमि द्वारा किए गए कृषि यज्ञ में देवत्व बदल दिए जाने पर कुलगुरु वशिष्ठ निमि को शाप देते हैं तो निमि भी महर्षि वशिष्ठ को शापित करते हैं। कवि ने पुराणों में दबी इस कथा को नई वाचा दी है। निमि के शाप से खण्डित वशिष्ठ की जगह शान्ति, मौन, प्रसन्नता और शिष्टता का जन्म और दूसरी ओर मृत निमि का जीवमात्र की पलकों पर निवास करना कवि का अनोखा सृजन है। 'धनुषभंग' की कथा सीता के अंतर्मन से जुड़ी हुई है। सीता की पलकों पर बैठे निमि मन्वन्तरों की बात कहते हैं। सीता मौन दर्शक, श्रोता, चिंतक की भाँति इस कथा को अनुभूत करती है। निमि का स्वप्न था – देवत्व पर मनुष्यत्व की विजय।

सीता की पलकों पर आसीन निमि वंशानुगत इक्कीस पीढियों से चलनेवाली धनुष और हल की कहानी को प्रतीकों में कहते हैं। धनुष शक्ति एवं शौर्य का प्रतीक है। पौरूष, पराक्रम, समर और संग्राम की प्रतीकात्मकता इससे निहित है। अदृश्य निमि वर्षों से मन में उत्पन्न अव्यक्त कथा को व्यक्त करने का अवसर पाते ही मौन सांकेतिक रूप से सारी बात कह देते हैं। शिव–धनुष जड़ता का प्रतीक है। सीता आकांक्षाओं की प्रतीक है। राम–सीता के विवाह की चित्रात्मकता के साथ ही कवि की प्रतीकात्मकता भी देखिए –

'निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया ने / पाँख खोली है / पुराना शस्त्र हारा है / धारा की बेटियों ने / मुस्कराकर आँख खोली है।'

कवि ने धनुष और हल की कहानी के प्रतीकों में कई नए बिम्ब देखे हैं। जैसे – निःशस्त्रीकरण की मंगल भावना, खेत खलिहानों की मिट्टी की सौंधी खुशबू, कृषकों और श्रमजीवियों का निष्पाप निर्मल व्यक्तित्व आदि उभरकर आये हैं। काव्य में गाय–बछडों का रंभाना, गर्दन में बँधी खंटी का खटनाना, हरेक ऋतु का गाँव, वहाँ के घरौंदे, मिट्टी में सने बच्चे, यौवन के झूलों पर पेंगे पर इठलाती गूजरी, मथनी का घर्र–घर्र आदि शब्द बिम्बों द्वारा बिम्बित होता है। प्रकृति का बिम्ब देखिए – 'सूरज ढल रहा नीचे / किरण की बाग को थामे / सितारों की हँसी लेकर / उतरती है नई शामें।' दूसरा एक बिम्ब आध्यात्मिक ताने–बाने के साथ देखिए – 'नाभि हल का बिम्ब है। / जिसकी अनी / उस पार मूलाधार तक नीचे गई है। / अगर हल नीचे गड़े तो कुण्डलिनी की जानकी ऊपर उठे / लेकर सुषुम्ना की तरंगित ज्वलित–सी जयमाले।'

इस प्रकार कवि ने इस प्रबंध काव्य का कथानक पुराण से लिया है, जिसका सूत्र श्रीमद्भागवत एवं देवी भागवत ने भी मिलता है। निमि और सीता मुख्य पात्र हैं। निमि अदृश्य पात्र है और सीता दृश्य। इन मिथक के माध्यम से कवि ने लोकजीवन और लोकसांस्कृतिक के प्रति अपने लगाव को व्यक्त किया है।

नरो वा कुंजरो वा (१९८४) :

श्री किशोर काबरा का यह प्रबंध काव्य पुराख्यान पर आधारित है, जिसमें आधुनिक समस्याओं और स्थितियों को उजागर किया गया है। आधुनिक युग में व्यक्ति अर्धसत्य को देखकर अपनी धारणाएँ बना लेता है तथा दंभ एवं अहंकार में जीता है। कवि के शब्दों में – 'नरो वा कुंजरो वा' खण्डकाव्य में अर्धसत्य पर टिके हुए द्रोणाचार्य के

जीवन–दर्शन की वह प्रतीक कथा है जो दूध के मुहाने से प्रारंभ होकर रक्त के महासागर पर समाप्त होती है। इसके कथा नायक हैं – आचार्य द्रोण। जो एक मिथक के रूप मे है। इस काव्य का उद्देश्य है – द्रोणाचार्य की मनःस्थिति का चित्रण करना तथा युगीन मानसिकता का विश्लेषण। प्रमुखतः द्रोण के चिंतन और मनस्ताप की यह कथा है।

युधिष्ठिर के मुख से अश्वस्थामा के वध की अधूरी बात सुनकर द्रोण मूर्छित हो जाते हैं। उसी अर्धचेतना में उन्हें अपना अतीत याद आता है। एकलव्य, द्रुपद, द्रौपदी, अभिमन्यु एक–एक कर प्रकट होते हैं और उन पर आरोप लगाते हैं। एकलव्य के आक्रोश में युगीन परिवेश की झलक देखने को मिलती है – 'गुरुदेव सुनें ! / यह कटा अंगूठा अब तक पीड़ा देता है / मैं कर दूँ चाहे क्षमा / मगर मेरे वंशज तो क्षमा नहीं कर पाएँगे / अब शिष्य अंगूठे दिखलायेंगे गुरुजन को / धमकायेंगे, गुरुकुल को आग लगाएँगे।' कवि के सामने प्रश्न है कि द्रोण अस्तित्व रक्षा हेतु अन्यायी व्यवस्था से संघर्ष करते रहे और शेष व्यवस्था से समझौता। क्या उनका पूरा जीवन अर्धसत्य पर टिका हुआ था? द्रोण की इसी कहानी को पाँच सर्गों में कहा गया है।

कुरुक्षेत्र में आधी बात सुनकर द्रोण मूर्छित हो अतीत से जुड जाते हैं और इस विचारक्रम में कवि ने समय को न्यायालय के रूप में ऑककर द्रोणाचार्य पर अभियोग लगाए हैं। एकलव्य, द्रौपदी, अभिमन्यु, अश्वस्थामा साक्षी के रूप में उपस्थित होकर द्रोण से अपने प्रश्नों का उत्तर माँगते हैं। ये चारों हमारे समाज के विभिन्न शोषित वर्गों एवं घटकों के चेतना बिन्दुओं से जुड़े प्रतीक हैं। एकलव्य जिज्ञासु छात्र, उपेक्षित जन एवं शोषित जन–समूहकी सहनशीलता का प्रतीक है। द्रौपदी आग की धूमाच्छादित लपट तथा अतृप्त वासना की प्रतीक है। अभिमन्यु नियति के रहस्यों का चक्रभेदन करनेवाली ज्ञान–विज्ञान की साधना के अधूरेपन का प्रतीक है। अश्वत्थामा लक्ष्यहीन, कुंठाग्रस्त,

किंकर्तव्यविमूढ, संकल्पों–विकल्पों में उलझा, कभी न मरनेवाला शापग्रस्त बुद्धिजीवियो का प्रतीक है।

इस खण्डकाव्य में अनेक बिम्बों की छटा देखने को मिलती है – 'मेरा जीवन, / खा–पीकर दरवाजे पर बेकार खड़े / उस हिन–हिन करते घोड़े–सा है, / जिसे कभी भी नहीं किसी ने खुले राजपथ पर दौड़ाया / जिसे न रथ में जोता या फिर समर–भूमि में लेकर आया। हाय, अस्तबल में ही मेरा अस्त हो गया बल सारा, / अब मेरे लिए बराबर हैं, सोने के दिन, चाँदी की यामा जी, मैं अश्वत्थामा।' स्वप्न बिम्ब में सूक्ष्म मनोविज्ञान भी व्यक्त है – मूर्छना की गहन काली रात बीती / स्वप्न बीते, स्वरन की बरसात बीती, / चेतना के ताल पर / स्मृति के पखेरू लौट आये / द्रोण की मूर्छा / तरंगित श्वास में घुलती रही, घुलती रही।' इस दृश्यात्मक बिम्ब में प्राकृतिक छटा बिम्बित हुई है – 'वर्षा आई ! वर्षा आई !! / काले बादल, चमचम बिजुरी / टपटप बूँदे पानी–पानी / खल–खल नाले, छल–छल नदियाँ / सोना माटी धानी–धानी।' प्रकृति का बिम्ब प्रस्तुत कर मन की पीड़ा को मुखर किया है – 'केसर साँझ, सोना प्रात / मीठा दर्द सीकर आ गई हैं ठंड।'

द्रुपद को बंदी बनाना, एकलव्य का गुरूदक्षिणा के नाम पर अँगूठा लेना, भरी सभा में द्रौपदी को नग्न होते देखना, चक्रव्यूह में फँसवाकर अभिमन्यु की हत्या करवाना आदि बिम्बों में द्रोण का कुंठाग्रस्त रूप देखने को मिलता है। कवि ने मिथक के माध्यम से नेतृत्व की शिथिलता, उपेक्षितों के विद्रोह, वैज्ञानिकों के बचकाने प्रयोग, भ्रष्टाचार, शोषण, बलात्कार, गृहयुद्ध, विश्वयुद्ध आदि बतलाएँ हैं। द्रोणाचार्य के माध्यम से कवि ने इंगित किया है कि ब्राह्मण कर्म से जुड़े बुद्धिजीवियों, चिंतकों, कवि आदि के लिए राज्याश्रय कितना घातक हो सकता है।

उत्तर महाभारत (१९९०) :

श्री किशोर काबरा के इस प्रबंध काव्य का प्रणयन महाभारत की पृष्ठभूमि पर हुआ है, जिसमे पाँच पाण्डवों एवं द्रौपदी के स्वर्गारहण की प्रतीकात्मकता में छिपे कई प्रश्नो के उत्तर कवि ने प्रस्तुत किए हैं। इस प्रबंध में महाभारत के सत्रहवें और अठारवें सर्ग को आधारभूत बनाया गया है। महाभारत की कथा को सात सर्गों में विभाजित किया गया है तथा कुरुक्षेत्र के रण के बाद पाण्डवों के हिमालय गमन की कथा को प्रस्तुत किया गया है। प्रथम सर्ग में महाप्रस्थान की पृष्ठभूमि है। 'नरो वा कुंजरो वा' के अर्धसत्य के कारण युधिष्ठिर को नरक के दर्शन करने पड़े। इस पाप से वे व्यथित हैं – 'पाप चाहे छोटा हो, मृत्यु के क्षण तक पीछा नहीं छोड़ता' यह दर्शन प्रबंध का बीजतत्व है। स्वर्गारोहण को निकलनेवाले पाँच पाण्डवों में से युधिष्ठिर को छोड़कर द्रौपदी सहित अन्य सभी हिमालय की बर्फ में गल जाते हैं। मृत्यु के साक्षात्कार के क्षणों में द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीम सभी तटस्थ दार्शनिक की भाँति अपने कर्म और आचरण का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हैं। आत्मलोचन ही प्रमुख तत्व है और यही आत्मालोचन आधुनिक भाव-बोध की उपज है।

कवि ने पाण्डवों के स्वर्गारोहण की कथा को एक प्रतीकात्मक अर्थ से जोडने का प्रयत्न किया है। कवि ने पाँच पाण्डव, पाँच कर्मेन्द्रियों तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों के तथा द्रौपदी को मन के प्रतीक के रूप में बतलाया है। द्रौपदी कामवासना की और युधिष्ठिर मनुष्य की अन्तर्निहित आध्यात्मिक अन्वेषणशीलता के परिचायक हैं। श्वान को कवि ने नवजागरण एवं जाग्रत धर्म का प्रतीक माना है। द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन, भीम और युधिष्ठिर ये षट्दोषों के प्रतीक हैं। कवि ने इन्हें षट्दोषों की कथा कहा है – 'मृत्यु का चिरमौन हिमागिरि का शिखर / चेतना का यह महाप्रस्थान है / षट्विकारों के शमन की

/ यह प्रतीकों में कथा है।' द्रौपदी को दुर्दमनीय काम का प्रतीक बतलाया है। सहदेव और नकुल रूप और गुण की विलोमात्मक पूरक इच्छाओं के प्रतीक हैं तथा भीम मद का प्रतीक है। युधिष्ठिर के लिए द्यूत मात्र युद्ध का प्रतीक था, जिसे उन्होने क्षत्रिय के नाते स्वीकार कि। 'उत्तर महाभारत' द्रौपदी और पाँच पाण्डवों के अंतर्जगत में चलनेवाले महासमर का प्रतीकात्मक प्रबंध काव्य है।

यह प्रबंध षटविकारों के शमन की ओर षट्दर्शनों की प्राप्ति का बिम्बात्मक आख्यान है। भीम अन्नमय कोष का बिम्ब है। धर्मराज के रूप में एक ऐसे शासन का बिम्ब उभरता है, जो धर्म को एक राजनीतिक हथियार के रूप में उपयोग करते हैं। नकुल और सहदेव आत्मरति के बिम्ब हैं। सभी पात्रों में अलग-अलग बिम्बों की सुंदर कल्पना की गई है, द्रौपदी यौवन के आने पर अपने अनुभव व्यक्त करती है। इसमें द्रौपदी के रूप सौन्दर्य का स्थिर शब्द चित्र बिम्ब के रूप में उभरता है- 'कान तक खींची हुई मुस्कान मानो, / श्रवण को फिर से लगा है बाण मानो। / भाल निर्मल गगन-सा, बेंदी उषा-सी / केश की श्यामल घटा दिखती निशा-सी। / और वेणी एड़ियों से बात करती / क्षितिज तक सौन्दर्य की बरसात करती।' इस प्रकार के अनेक बिम्ब देखने को मिलते हैं।

उत्तर रामायण (१९९४) :

श्री किशोर काबरा कृत 'उत्तर रामायण' सीता के उदात्त चरित्र को केन्द्र में रखकर लिखा गया है, जो विस्फोट, विस्मय, विक्षेप, विस्तार और विसर्जन इन पाँच सर्गों में आबद्ध है। राम-रावण युद्ध के बाद सीता की मनोभूमि पर लडे गए युद्ध की यह मौन कथा है। कथा का प्रारंभ अश्वमेघ यज्ञ की पूर्णाहूति के बाद अयोध्या की जन-सभा में राम के समक्ष कविवर वाल्मीकि सीता के चरित्र को पवित्र प्रमाणित करते हुए सीता और लव-कुश को स्वीकार करने को कहते है। तभी राम के मन में एक द्वन्द्व उठता है। यहाँ कवि ने

सीता के मन में चल रहे द्वन्द्व को भी चित्रित किया है। सीता के गर्भ धारण से लेकर प्रसव तक की विभिन्न स्थितियाँ 'नौमासा' वर्णन में दी गई हैं। कवि ने सीता किसकी पुत्री है इसे पौराणिक और लोककथाओं के आधार पर एक साथ गूँथने का प्रयास किया है। स्मरण शैली के माध्यम से सीताजी की कथा पौराणिक संदर्भ में प्रस्तुत की गई है। राम जन्म, सभी भाइयों की विभिन्न बाल क्रीड़ाएँ, गुरु गृह जाना तथा जनकपुरी में विवाह होना समस्त प्रसंगों को रामायण के आधार पर लिया गया है। कवि ने सीता को मन की अतल गहराइयों में डूबता हुआ बतलाया है और इसके लिए पृथ्वी की गोद में सामने की प्रक्रिया को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है।

'उत्तर रामायण' में राम को प्रजा वत्सल के रूप में बतलाया गया है। 'उन्होंने लोकोराधन के लिए अपनी सर्वस्व प्राणप्रियतमा का भी त्याग कर दिया।' आरोप एक व्यक्ति द्वारा या समुदाय द्वारा लगाया गया है– यह महत्वपूर्ण नहीं है, लेकिन साम्राज्य में एक व्यक्ति का विचार भी उतना ही महत्वपूर्ण था जितना कि समुदाय का। इसे कवि ने मिथक के रूम में प्रस्तुत किया है। एक ओर श्रीराम का आत्मत्याग है और दूसरी ओर अग्निपरीक्षा दे चुकी सीता के चरित्र पर अँगुली उठाई गई है। राम का आत्मत्याग आध्यात्मिक साधना का सूचक है, जिससे अयोध्यावासी आत्ममंथन कर सकें। अयोध्यावासियों की मानसिकता निर्विकार हो सके। इस दिशा में सीता का वनवास आत्मशुद्धि के श्रेष्ठ साधन के रूप में इंगित हैं।

सीता लवकुश के वाल्मीकि आश्रम में जन्म देती हैं। सीता लव–कुश वाल्मीकि आश्रम में प्रशिक्षण अंतर एवं बाह्य सुघड़ व्यक्तित्व विकास हेतु श्रेष्ठ स्थल है। सीता निर्वासन एक ओर नारी शोषण का प्रतीक है। सीता के साथ हुए अन्याय के विरुद्ध मिथिला में आक्रोश स्वाभाविक है। जबकि सीता के प्रति राम के मन में अनन्य प्रेम है।

इस दृष्टि से जनमानस में विचार है लेकिन उस विचार का धरातल विवेक पर आधारित नहीं है। इस रूप में सीता ने दो अग्नि परीक्षाएँ दी। प्रथम लंका में दूसरी वाल्मीकि के आश्रम मे रहते हुए श्रीराम के प्रति प्रेम और विश्वास की अग्नि परीक्षा इस प्रकार वैदेही मे अक्षत एकनिष्ठा और एकरस रीति है और दूसरी ओर राम में आदर्श एकपत्नी व्रत का उच्च आदर्श है। राम आदर्श राजा एवं मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। सीता आदर्श नारी एवं समर्पिता पत्नी है। लक्ष्मण आदर्श भ्राता एवं आज्ञापालक हैं। वाल्मीकि संवेदनशील एवं उत्कृष्ट व्यक्ति हैं। लव और कुश आदर्श पुत्र हैं।

इस प्रबंध में बिम्बों की छटा है। एक दृश्य बिम्ब देखिए – 'हैया हो, हैया रे ! / तैर चली नैया रे ! / गंगा की लहरों पर / जैसे पुरवैया रे !' लव–कुश को बिम्ब के रूप में देखें – 'एक दर्पण स्वच्छ / उसके ठीक पीछे एक निर्मल बिम्ब / निर्मल बिम्ब के पीछे / सतत गतिमान दो प्रतिबिम्ब।' सीता का स्मृति बिम्ब देखिए – 'ज्वार में स्मृतियाँ उतरती हैं / बिना पतवार देखो ! / उड़ रहा पुष्पक हमारा / नील नभ में पाँख खोले, / बादलों से झाँकते नीचे / सभी हम आँख खोले।' इस प्रकार के अनेक बिम्ब देखे जा सकते हैं।

आर्तनाद (१९९०) :

श्री जयसिंह 'व्यथित' कृत 'आर्तनाद' रावण के मिथक को लेकर लिखा गया प्रबंध काव्य है। इसमें युगीन समस्याएँ चित्रित हैं तथा रावण को नए संदर्भ में रख, समकालीन अवसाद, पीड़ा, अनाचार एवं त्रासदी को भौतिकता की देन बतलाया गया है। कवि की अनुभूति एवं विचार–चिंतन प्रक्रिया के धरातल पर हैं। प्रस्तुत रचना हुंकार, चिंतन और समन्वय नामक तीन सर्गों में विभाजित है। हुंकार में रावण की मनोव्यथा द्वारा आज की मानवीय विडम्बना को दिखलाया है। चिंतन में आज का मानव किस कदर गिर

चुका है, किस कदर चारों तरफ भ्रष्टाचार व्याप्त है, उस स्थिति पर चिंतन किया गया है तथा गाँधीजी के आदर्श, गीता का निष्काम कर्मयोग, गौतमबुद्ध की करुणा एवं मानवता, तुलसीदास के रामराज्य की कल्पना, कबीर का आडम्बरहीन सरल जीवन दर्शन, मार्क्स का शोषण मुक्त समाजवाद, विनोबा का सर्वोदय सब कुछ समाहित है। समन्वय में भौतिकता और आत्मिक विकास, भावना और बुद्धि, ह्रदय और मस्तिष्क, स्थूल एवं सूक्ष्म के समन्वय से एक नए कल्याणकारी विश्व के निर्माण की आकांक्षा व्यक्त की गई है।

राम और रावण को कवि ने आधुनिक संदर्भ में रखकर परखा है। रावण प्रखर बुद्धिवादी और आधुनिक भौतिकवादी समाज व्यवस्था का प्रतीक है और राम भावनाओं तथा जीवन मूल्यों का प्रतीक हैं। कवि का चिंतन है कि राम की उपेक्षा करना जीवन मूल्यों की उपेक्षा करना है क्योंकि मानव जीवन का लक्ष्य रावण नहीं राम हैं। इन दोनों प्रतीकों के माध्यम से युग के परिवेश को बतलाया है। गाँधीजी, विनोबा भावे और अब्दुल गफ्फार खान को आज के विवश राजनीतिज्ञ के प्रतीक रूप में लिया गया है। 'आर्तनाद' प्रबंध–काव्य शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। 'बन्द बेड़ियों में जकड़े हैं, राम बड़े असहाय खड़े।' यहाँ बेड़ियों को राम की विवशता का प्रतीक बतलाया गया है। 'रावण की मति घर घर छाई, / झूठी राम दुहाई है। / भौतिक सुख–सपनों के बल ही / होती यहाँ सगाई है।' यहाँ रावण भौतिक सुख–सपनों का प्रतीक है। कवि ने मिथक के माध्यम से नया ही चिंतन का प्रासाद खडा किया है। रावण कर्म से प्रेरित है लेकिन राम जीवन से पलायन कर गए हैं। इस प्रकार कवि ने बड़े ही प्रतीकात्मक रूप से युग मानव की वेदना को व्यक्त किया है।

इस प्रबंध में अनेक बिम्ब छाए हुए हैं। कर्मयोग का एक बिम्ब देखें – 'हुआ सबेरा जगीं दिशायें कर्म योग संदेश लिए। / अर्धरात्रि का सुंदर सपना रावण का उपदेश लिए।'

उसी प्रकार एक चित्रात्मक बिम्ब देखे – 'नाम पुलिस का सुनते सज्जन थरथर–थरथर काँपे थे। / जूता–चप्पल छोड सभी फिर हौले–हौले भागे थे।' इस प्रकार के अनेक बिम्ब हम इस प्रबंध में देख सकते हैं।

दलितों का मसीहा (१९९१) :

श्री जयसिंह 'व्यथित' रचित यह प्रबंध काव्य चिंतनप्रधान है। कवि ने एक नव पथ निर्माता के रूप में बाबा साहेब आम्बेडकर के अंतर–बाह्य स्वरूप को मसीहा के रूप में हमारे सामने रखा है। वे मानवजाति के अंधकार पक्ष के लिए प्रकाश स्तंभ समान थे। कवि ने उनके मिथक द्वारा समस्त मानवजाति की सनातन पीड़ा को उकेरा है, जो बाबा साहब के विद्रोह की विचार सृष्टि में पनपती हुई अस्मिता की ज्योति जलाती है। उनका जीवन मंत्र विश्व को कर्मप्रधान बनाना था तथा जन्मप्रधान व्यवस्था को समाप्त करना था। बाबा साहेब आम्बेडकर मानवीय आदर्शों के प्रतीक हैं।

राघवेन्द्र (१९९१) :

व्यथित जी के इस प्रबंध काव्य में त्रेतायुग की पुरानी रामकथा है। जिसका कथानक राम जन्म से लेकर बालिवध के प्रसंग तक फैला हुआ है। इस समस्या मूलक प्रबंध काव्य में नारी समस्या, वर्ग भेद, शोषण उत्पीडन, आचार व्यवहार की समस्या के साथ समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। कवि ने मिथक के माध्यम से शाश्वत भावप्रवाह को वर्तमान समस्यामूलक जीवन से जोड़ा है। कवि ने अहिल्या उद्धार की कथा द्वारा भारतीय समाज में नारी और पुरुष को लेकर उत्पन्न प्रश्न को उठाया है। राम दुःख भंजक एवं प्राणी–जगत में नई चेतना के प्रतीक हैं। सदियों से उपेक्षित अहिल्या को समाजिक प्रतिष्ठा प्रदानकर राम अभिनव मूल्यों की स्थापना करते हैं। इस प्रकार कवि ने राम को महान क्रान्तिकारी युग दृष्टा एवं युग सृष्टा के रूप में देखा है। अहिल्या लाखों निरीह

नारियों की प्रतिच्छवि है। इन्द्र प्रभुता सम्पन्न शासनाध्यक्षों के प्रतीक हैं। इसमें प्रकृति बिम्ब देखिए – 'प्रकृति–झूम उठे सब पशु–पक्षी थे, बाग–बगीचे थे / सरि–सरवर अभिराम बने थे, चरण–कमल रज चूमे थे।' साथ ही 'सरजू भैया झूम–झूमकर लहरो के मिस गाती थी।' जैसे अनेक बिम्ब देखे जा सकते हैं।

बालकृष्ण (१९९२) :

श्री जयसिंह 'व्यथित' के इस प्रबंधकाव्य में भगवान कृष्ण के लीलामय जीवन के दस बाल प्रसंगों को राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए लिया गया है। कवि ने इस मिथक के माध्यम से आज की युवापीढ़ी के सामने खड़ी चुनौतियों का सामना करने हेतु मार्ग प्रशस्त किया है कवि ने कृष्ण के बाल स्वरूप में ही उद्धारक और धर्मपालक के दर्शन करवाये हैं। उन्होंने इसमें नवजीवन का दर्शन करवाकर राष्ट्रधर्म की ज्योति जलाई है। कृष्ण का चरित्र दिग्भ्रमित पीढ़ी के लिए आलोक स्तंभ है। कवि ने गोवर्धन पूजा को मौलिक संगठन का प्रतीक बतलाकर रूढ़िवादिता का खण्डन किया है। इसमें बिम्ब भी है देखिए – 'मुक्केबाजी किया कृष्ण ने गिरा कंस बेभान हुआ / उड़ा हंस का पिंजड़ा खाली हाय ! नष्ट अभिमान हुआ।' ऐसे अनेक बिम्ब देखे जा सकते हैं।

हनुमान तीसिका (१९९४) :

व्यथित जी के इस प्रबंध काव्य में श्री हनुमान के कथ्य को प्रस्तुत कर उनकी अलौकिकता और देवत्व शक्ति का निरूपण किया गया है। इसमें राम के वनगमन के समय, मिलन से लेकर सीता के उद्धार तक की घटनाओं को बतलाया गया है। यह प्रबंध काव्य सगुण भक्ति का संकीर्तन काव्य है। इसमें हनुमानजी की कर्मठता बतलाई गयी है। तथा इसमें प्रतिपाद्य कर्तव्यबोध है। तीस छंदों में रामभक्त हनुमान के अनेक आयामी आदर्श चरित्र का उदत्त चित्रण है। सीता अन्वेषण के समय हनुमान पर आई कठिनाइयों

का प्रत्यक्ष बिम्ब देखिए – 'सीता मैया की सुधि–खातिर लाँघ समुन्दर जाता था / संभव नहीं असभव जो था संभव कर के आना था।' तथा 'हाहाकार मचा लंका में त्रस्त सभी नर नारी थे' में भय विषयक मनोवैज्ञानिक बिम्ब है। इस प्रकार जटिलतर अनुभव एव अर्थ संश्लेषण इन बिम्बों के द्वारा स्फुट हुआ है।

कैकयी के राम (१९९८) :

श्री जयसिंह 'व्यथित' के इस प्रबंध काव्य में कैकयी के मिथक द्वारा नारी मन के गहनतम रहस्यों से निःसृत वेदना का कवि ने चित्रण किया गया है। इसमें कैकयी का प्रभावशाली तापसी रूप उभरकर आया है। कवि का ध्येय है कि वर्षों से तापित–शापित, उपेक्षित, तिरस्कृत कैकयी वास्तव में महान नारी थी। कैकयी का चरित्र सती, साध्वी और सत की ज्योति जलानेवाला है। कैकयी उपेक्षिता एवं तिरस्कृत रहकर भी राम को लोकनायक बनाने में पूरा समर्पण देती है। यह विशुद्ध प्रयोजन लोकरंजन एवं आधुनिक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। कैकयी राम के मन में क्रान्ति का बीज बोती है, इससे वह क्रान्तिकारी के रूप में हमारे सामने आती है। कैकयी लोकपावन तथा आदर्श चरित्र की प्रतीक है। 'ध्वज का दण्ड बनी कैकयी, राम–ध्वजा फहराई है' में कैकयी को राम रूपी ध्वजा का दण्ड बतलाया गया है। इसमें बिम्ब की छटा भी है – 'दिव्य प्रकाश दिवाली जगमग दीप–शिखा लहराई थी। / सीता राम–लखन घर आये, गमक उठी अमराई थी।' दृश्यात्मक बिम्ब देखिए – 'राजन पटक–पटक सिर पीटे, बहुत–बहुत बिलखाये थे। / नर–नारी भी तड़प–तड़पकर, हाय–हाय चिल्लाये थे।' इस प्रकार के अनेक बिम्ब देखे जा सकते हैं।

कस्मै देवाय (१९९९) :

श्री भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज' के 'कस्मै देवाय' मिथकीय प्रबध काव्य का धरातल मूल्य–चेतना पर आधारित है। भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यो को कवि ने स्वस्थ मानव जीवन की मानसिकता के रूप में स्वीकार किया है। इस खण्डकाव्य में नायक–नायिका की योजना नहीं है लेकिन 'प्रसादजी के 'आँसू' के समान इसकी प्रतीति व्यष्टि और समाष्टि पर पड़े हुए इनके प्रभाव से ही होती है। इस दृष्टि से इसे प्रबंधकाव्य में एक प्रयोग कहा जा सकता है।' इसका शीर्षक ऋग्वेद के मंत्र के आधार पर 'कस्मै देवाय' रखा गया है। मूल्यों के प्रतीक के रूप में कवि ने श्रीकृष्ण, मीरा, गाँधी आदि के मिथकीय तत्व को प्रतीक के रूप में लिया है। कवि ने प्रेम के प्रतीक के रूप में श्रीकृष्ण को केन्द्र में रखकर कवि ने राधा, यशोदा, गोप, गोपियाँ और मीरा के प्रेम, वात्सल्य, स्नेह, भक्ति के विविध आयामों की ओर इंगित किया है। प्रेम के कारण दुःख भी सुख में बदल जाता है। इन्हीं भावों को व्यक्त करते हुए कवि ने भावपूर्ण बिम्ब चित्रित किया है – 'सतरंगी सपने / पलकों पर झूम पड़ेंगे। / मोती की लड़ियाँ बन / मुख को चूम हँसेंगे। / मृग–छौने से असित–धवल / बादल भागेंगे / संध्या की लाली को / श्रृंगों पर टांगेंगे।'

जाती बार न मुख मोड़ो (१९९४) :

श्री सुरेश शर्मा 'कान्त' कृत 'जाती बार न मुख मोड़ो' यूँ तो एक लम्बी कविता की श्रेणी में आती है तथापि मरने के बाद अर्थी पर लिटाए जाने से लेकर चिता पर चढ़ाए जाने तक का आत्मबोध व्यक्त किया गया है। इसमें सूक्ष्म कथावस्तु कवि की काल्पनिक मिथक के रूप में व्याप्त है जिसमें आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ, महानगर का संत्रास, घुटन, भुखमरी, गरीबी, भ्रष्टाचार, आतंकवाद आदि को भी यथास्थान कवि ने देने का प्रयत्न किया है। कवि ने स्वीकारोक्ति के अंतर्गत लिखा है – 'दो–रंगी दुनिया और सतरंगे

लोगो के बीच जीकर मैं सिर्फ छोड़े जा रहा हूँ। अर्थहीन गंवाये, जीवन की पीड़ा और पश्चाताप, छल–कपट, मोह–माया, स्वार्थ, दम्भ और अभिमान में लिप्त अनुभूतियों के आलाप और प्रलाप !' कान्तजी के बिम्ब कथ्य के अनुरूप मार्मिक हैं – 'नदी–किनारे बैरागी की / अब न यहाँ बँस बाजे / सांझ–सकारे और न बछड़ों की / रून–झुन घंटी बाजे।' उम्र के कागज पर साँसों की कलम से जीवन की कहानी में मृत्यु का दरवाजा खटखटाना अपने आप में एक मौलिक प्रतीक योजना है।

अन्य प्रबंध काव्य :

श्री भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज' रचित 'कारा' प्रबंधकाव्य सन् १९५० में प्रकाशित हुआ। इसका कथानक चार सर्गों में विभक्त है – शाहजहां, बहादुरशाह, भगतसिंह और गांधी सर्ग। कारा यानी कारागृह। इसका पूरा कथ्य आत्मकथा के रूप में हैं। इन ऐतिहासिक पात्रों के कारावास में बीते निर्वासित जीवन की झाँकी ही 'कारा' का सौन्दर्य है। डॉ. विष्णु विराट कृत 'कर्ण' में कर्ण की मनोभूमि पर चलनेवाला अन्तर्द्वन्द्व प्रस्तुत किया गया है। कुरूक्षेत्र के घावों की अपेक्षा पाण्डवों की अनीति उसे अधिक यातना देती है। युद्धोपरान्त उसका मन द्वन्दग्रस्त हो उठता है। तब उसका चिन्तन महाभारत युद्ध की तह तक पहुँचता है और वहाँ उसका साक्षात्कार कुन्ती से होता है। वैचारिक स्तर पर कुन्ती और कर्ण के वार्तालाप में प्रतीकों–बिम्बों की योजना कवि की मौलिक देन है। श्री राजेन्द्र काजल रचित 'चौलादेवी' प्रबंधकाव्य में गुजरात के इतिहास प्रसिद्ध वीर एवं धमिष्ठ नरेश भीमदेव की रानी चौलादेवी के अप्रतिम सौन्दर्य, कलाप्रेम एवं शौर्य की गाथा को प्रस्तुत किया गया है। इतिहास, काव्य–सौन्दर्य एवं युगबोध का इसमें कलात्मक चित्रण है। डॉ. विष्णु विराट कृत 'निर्वसना', श्री गोपीचन्द चौबे कृत 'हेमांगिनी'

एवं 'पृथा', श्री चन्द्रपालसिंह यादव कृत 'विमाता', भारती पाण्डे कृत 'चिन्तन संवाद' आदि प्रबंधकाव्यों में भी मिथक प्रतीक एव बिम्ब देखे जा सकते हैं।[11]

प्रबंध काव्यों में पौराणिक कथाओं के प्रासंगिक संदर्भ रोचक भी हैं और कथ्य की प्रभावान्विति को अभिवृद्धि भी करते हैं। प्रबंधकाव्यों के सृजन की इस समृद्ध परम्परा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. गोवर्द्धन शर्मा कहते हैं कि ''गुजरात के वर्तमान हिन्दी कवियों ने हमें अनेक प्रबंध काव्य दिये हैं। अम्बाशंकर नागर कृत 'प्रम्लोचा, किशोर काबरा की 'उत्तर रामायण', 'उत्तर महाभारत', 'परिताप के पाँच क्षण', 'नरो वा कुंजरो वा", 'धनुषभंग', जयसिंह 'व्यथित' की 'आर्तनाद', 'राघवेन्द्र', 'बालकृष्ण', 'कैकयी के राम', 'दलितों का मसीहा', राजेन्द्र काजल रचित 'चौलादेवी', विष्णु विराट कृत 'कर्ण' भागवंतप्रसाद मिश्र की 'कारा', 'कस्मै देवाय' तथा भारती पांडे की 'चिन्तन संवाद' प्रबंध रचनाएँ हैं। रचनाओं के नामाभिधान से ही स्पष्ट है कि हमारे कवियों ने जहाँ एक ओर राम, कृष्ण जैसे दैवी पात्रों को अपने काव्य का उपजीव्य बनाया है, वहाँ दूसरी ओर महाभारत के पात्रों और घटनाचक्र ने उन्हें कुछ नये ढंग से अनुप्राणित किया है। यही नहीं ऐतिहासिक पात्र चौलादेवी और बाबा साहेब आम्बेडकर भी कृतियों के जनक बने हैं। हमारे कवियों ने परंपरागत वस्तु को भी नूतन अभिगम और विन्यास में प्रस्तुत किया है। जहाँ किशोर काबरा ने अपना नया सोच 'उत्तर रामायण', 'उत्तर महाभारत' तथा अन्य रचनाओं में पेश किया हा। वहाँ अम्बाशंकर नागर ने 'प्रम्लोचा' की सामान्य कथा को मिथकीय मनोवैज्ञानिक रंग देकर ऊँचाई पर पहुँचा दिया है। भागवत प्रसाद मिश्र की कृति 'कस्मै देवाय' प्रबंध रचना में सर्वथा नूतन प्रयोग है। पाँच सर्गों मे रचित यह कृति परंपरागत नायक रहित है। कवि ने सर्गों का नामकरण सत्य, धर्म, शांति, प्रेम, अहिंसा के आधार पर कर प्रत्येक सर्ग में एक-एक मूल्य की स्थिति और विकास का चित्रण किया

है। भले ही हमारे समकालीन प्रबंध कवि अभी तक वह ख्याति नहीं पा सके, जिसके वे अधिकारी हैं, पर नये क्षेत्रों के संधान के मामले में इनका प्रयास स्तुत्य है। चूंकि इनमें से अधिकांश कवियो पर स्वतंत्र आलेख इसी पुस्तक में जा रहे हैं, हम अपनी बात यहीं सीमित करेंगे और पिष्टपेषण से बचेंगे।

मुक्तक के सभी रूपों में विपुल साहित्य सर्जन हुआ है। यहाँ भी विषय वैविध्य एवं शिल्प-प्रयोग आकर्षक है। गीत, गजल, छंदबद्ध और अछांदस रचनाएँ लिखी गई है। यहाँ तक की जापानी छंद हाइकू भी गुजरात में आकर परवान चढा। हाइकू के क्षेत्र में भगवतशरण अग्रवाल ने अपनी साधना से उसे अखिल भारतीय लोकप्रियता दिला दी है। यही नहीं उनकी प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रेरणा से हमारे अनेक कवियों ने इस काव्यरूप को सफलतापूर्वक अपनाया है। सामाजिक सरोकार के दो हाइकू देखिये –

जागते रहो, / मेरा देश महान !
सोया युवक ![१२]

आज लीडर / हैं मदछके हाथी
अंकुश बिना[१३]

इसी तरह परंपरागत छंद विधान की एक उक्ति देखिए –

पहले सठियाते रहे, कुर्सियाते अब लोग।
धृतराष्ट्र से बनते गये, आँखों वाले लोग।।[१४]

* * *

बीते हुए कल का हिसाब लगाने में,
सो गये थककर आज के सभी पल;
देने से पहले ही आज का जबाब,
आ गया सवाल-सा आनेवाला कल।[१५]

इस संबंध में विस्तार से आगे चर्चा करेंगे। गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता मे बालकों के लिए रचित पर्याप्त एवं स्तरीय रचनाएँ उपलब्ध हैं। इनमें शिशु गीतो से लेकर किशोर साहित्य तक की कृतियाँ मिल जाती है। विषय वैविध्य चिंत्य है। दस से अधिक कवियों की रचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित हैं। इनमें बाल मंदिर जाते शिशुओं के लायक मनोरंजक तुकबंदी भी है – जैसे

कालू मेरा प्यारा कुत्ता, पूसी है बिल्ली का नाम।

उस पिंजरे में बैठा तोता, करता सबको राम राम।[१६]

* * *

बच्चों आओ हम सब मिल कर,

खेले एक अनोखा खेल, कूकू रेल छूछू रेल।[१७]

वहाँ बालकों में आदर्शवादिता, सुसंस्कार और राष्ट्रप्रेम की भावनाएँ विकसित हों इस दृष्टि से भी पर्याप्त बालगीत उपलब्ध है।

अच्छे बच्चे, सच्चे बच्चे, सबको भाते हैं।

मात, पिता, गुरु को आदर से, शीश नवाते हैं।[१८]

* * *

हम आगे बढ़ते जाएंगे।

हम भारत माँ के बच्चे हैं, हम अपनी धुन के सच्चे हैं।

चाहे जितनी बाधाएं हों, उनसे न कभी घबराएंगे। हम....[१९]

* * *

हम नवयुग निर्माण करेंगे, हम भारत संतान हैं।

हमें न कोई छोटा समझे, हम भारत की शान हैं।[२०]

किशोर काबरा, विष्णु विराट, जयसिंह 'व्यथित' आदि कवियों का भी इस क्षेत्र में योगदान रहा है। इन्होंने फुटकर बालगीतों के साथ कथाकाव्य भी प्रदान किये हैं। 'आज यौवन ने पुकारा देश को', 'खट्टे अंगूर', 'टिमटिम तारे', 'तितली के पंख', 'बाल कृष्णायन', 'बालरामायण' किशोर काबरा की कृतियाँ हैं। कथ्य, शिल्प और उद्देश्य की दृष्टि से वैविध्य दर्शनीय है। यही नहीं बालसाहित्य के क्षेत्र में भी अभिनव प्रयोग उल्लेखनीय है। एक कहावती उक्ति जो लोककथाओं से अद्‌भूत है का सुन्दर व्यंजक प्रयोग है। एक योद्धा घुड़सवार मात्र इसीलिए युद्ध में पराजित हो गया कि उसके घोड़े की नाल की कील गायब थी – भागवतप्रसाद मिश्र इसे यों प्रस्तुत करते हैं –

बिना कील के नाल खो गया, बिना नाल के घोड़ा।

पलक मारते नक्शा बदला, अधिक कहो या थोड़ा।

घोड़े बिन लाचार सवार, गया युद्ध में बेबस हार।

बिना युद्ध के खोया राज, यह सब एक कील के काज।[२१]

मनोरंजन, आत्मविकास अपनी सांस्कृतिक गरिमा को समझने और जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठा पैदा हो – ऐसे विविध लक्ष्य लेकर हमारी समकालीन बाल कविता चली है। क्रीडागीत, प्रयाणगीत से लेकर कथाकाव्य तक इसका फलक विस्तृत है।

कवियों की तरह ही मध्यकाल से ही यहाँ हिन्दी कवयित्रियाँ सक्रिय रही हैं। इनमें भक्ति परंपरा की अचरत बा, ओंकारेश्वरी, रूपांबाई, राजकुंवर सोरठयानी, फूलकुंवर, गवरीबाई आदि मुख्य हैं। दरबारी माहौल में पनपी काकरेची ठकुरानी, जामसुता प्रतापबाला

ने भी हिन्दी में कविताएं की हैं। चूंकि सौराष्ट्र चरणों का घर रहा है होलबाई उदास, आई वरूडी, सांई नेचडी आदि डिंगल की कवयित्रियाँ हो गई हैं। आज चालीस से अधिक बहनें कविता–सर्जन मे लगी हैं। यह अलग बात है कि इन सबका संबंध परपरा से नहीं बल्कि समसामयिकता से है। इनमें से अठ्ठावीस के एक या एकाधिक काव्य संग्रह निकल चुके हैं। ये हैं अंजना संधीर, इंदिरा दीवान, उत्तरा, क्रान्ति येवतीकर, दिव्या रावल, नलिनी पुरोहित, निर्मला आसनाणी, प्रणव भारती, प्रतिमा पुरोहित, प्रमीला शुक्ल, पुष्पलता शर्मा, भारती पांडे, भारती मेहता, मंजु भटनागर, मधुमालती चौकसी, मरियम गजाला, मीरां रामनिवास, लक्ष्मी पटेल, राज आनंद, शशि अरोरा, शांति शेठ, शीला घोडे, सरिता पटेल, सुधा श्रीवास्तव, सुनंदा, सुषमा श्रीवास्तव, हरिनकुमारी, हर्षा सावनुर। जीवनपथ के विभिन्न मोड़ों और रास्तों पर बढ़ती हुई इन सभी सर्जकों में एक वस्तु समान है, और वह है नारी–हृदय। इस काव्य जगत में आपको नारी के सभी रूप देखने को मिलेंगे। प्रेयसी, पत्नी, माता, संयोगिनी, वियोगिनी, प्रेमी से पीड़ित या पति से छली गई, बहिन, कोमल हृदया पुत्री, आक्रोश से उफनती देवी – ये तथा अन्य कई रूप निर्व्याज भाव से इन कविताओं में चित्रित हुए हैं। कुछ उदाहरण लें – प्रिय की राह जोहती नायिका –

तुम न आये द्वार हमारे।

नयनों का मैंने दिया बनाया/मन की उसमें बात जलायी।

मन को तुम तक पहुँचाने की/कितनी मैंने विधि अपनायी।

कजरा गजरा बिन्दियाँ सूनी/उठती गिरती साँसे सूनी,

थक गये शब्द रुक गयी लिपि/साजन बिनु मनुहार तुम्हारे।। तुम न आये... [२२]

प्रिय के प्रति पूर्णतः समर्पित नारी को जब उसकी बेवफाई का पता चलता है तो वह छटपटाने लगती है। वह सीधा सवाल करती है –

महारानी हमें कहना, ताज उनको पहनाना देखा ऐसा है कहीं?

आपने हमसे वफा का झूठा दावा किया क्या यह सच नहीं?[२३]

यही व्यथा जब आक्रोश का रूप धारण करती है, तो बेबाक सत्य टपक पड़ता है– 'गृहिणी' को मात्र एक ढाल की तरह प्रयोग में लिया जा रहा है। उसके सम्माननीय स्थान की उपेक्षा की जाती है, मात्र दिखाने का ढकोंसला रहता है– यथा

गृहिणी ! तुम कहाँ हो? / कभी सोचा है तुमने?

घर रूप किताब के / पृष्ठों पर तुम्हारा / अस्तित्व कहाँ है?

हाशिये के अन्दर या बाहर? / या 'फुटनोट' की भाँति,

डाल दिया गया है तुम्हें भी। 'फुटलाइन' के नीचे,

जब 'रेफरेन्स' की जरूरत हो / तो काम आ सको पुरुष के।[२४]

नारी जीवन के अनेक दर्दनाक पहेलूओं का भावप्रवणता से सुरेख चित्रण इन कविताओं में मिलता है। 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आँचल में है दूध और आँखों में पानी' वाली मैथिलीशरण गुप्त की उक्ति आज भी उतनी ही सच है, जितनी वह यशोधरा के संदर्भ में थी। यही कारण है कि नारी जीवन की काव्यसृष्टि में व्यथाकथा सर्वत्र दीख पड़ती है। पर कहीं इसे दूसरे रूप में भी लिया गया है। एक उदाहरण लीजिए–

मेरी एक सखी ने पूछा / यह दर्द कहाँ से लाई हो?

मैंने कहा – यह दर्द दिलका टुकड़ा / ह्रदय का चंदन है।

जिसे जितना घिसो, पीड़ा दूर होगी / ठंडक, शीतलता प्राप्त होगी।

यह दर्द काले मंडराते बादल हैं / दो गर्जते हैं, बरसते है।

दुनिया के दर्द को समेट कर चले जाते। 'दर्द' जीवन का मर्म है।[२५]

यह दर्द ही मातृत्व का चंदन है जो सदैव सदैव अपनी नई पीढ़ी के हित की कामना करता है।

मेरे प्रिय, कुछ भी बनो तुम,

किसी भी क्षेत्र में रहो तुम,

तुम्हारे लिए मेरी है यही कामना–

सितारों में तुम चांद बनो

फूलों में तुम गुलाब बनो / मनुष्यों में बनो इन्सान

जीवन में तुम बनो महान।[२६]

हमारी कवयित्रियों का समाज जीवन से भी गहरा सरोकार है। आज के कटु यथार्थ को नारी से भला अधिक कौन जानेगा? देश की दयनीय अवस्था कवयित्री को बैचेन बनाती है। वह कह उठती है–

घी दूध गायब महज खूँ की नदियाँ,

बेमौत मरती गरीबों की गलियाँ !

दहशत की हर ओर जलती है होली !

खाकर के मरते हैं मासूम गोली ![२७]

यह सब इसीलिए हो रहा है कि आज हम अपने को भूल झूठी स्पर्धा में पड़े हुए हैं। बेतहाशा भौतिकता के पीछे दौड़ रहे हैं, और इस अपाधापी में जीवनमूल्यों का विघटन हो रहा है।

अपने वर्तमान पर / भविष्य को लादे
भाग रहे हैं, / भटक रहे हैं लोग।
हर तरफ होड़ लगी है, / आगे निकल भागने की।
टाँगे खींची जा रही हैं / एक – दूसरे की।[२८]

* * *

मौजूदा हालात ने गिरफ्त किये हैं विचार अपने।
सजाए–मौत पा रहे हैं, दिन दिन उसूल अपने।
वक्त की चोटों से बचालो इस वतन को,
वर्ना इतिहास को भूलने की सजा भुगतेंगे ख्वाब अपने।[२९]

ऐसी दशा में जनसाधारण की हालत तो दयनीय है। यदि वह अपने प्रति हुए अन्याय की गुहार लगाये भी तो सुनता कौन है? न्यायालय तो निर्जीव, निस्पन्द सा है–

व्याकुल आँखों के दायरे में / नाचती आशंका
बैठे हुए काले कोट / रेंगता न्याय
मीलों लम्बा सफर तय करके भी
मंजिल तक पहुँचना बहुत कठिन।[३०]

इसी भयावह स्थिति को मिथकीय पात्रों के माध्यम से उजागर किया गया है–

अंधे धृतराष्ट्र की द्यूत–सभा में / अन्द छिपे दुःशासन दुर्योधन,

नहीं बचने देंगे निरीह द्रौपदी को / क्या कृष्ण कभी नहीं आएँगे?[31]

हमने देखा कि कवयित्री ने अत्यन्त कौशल से महाभारत के पात्रो को शक्तिशाली प्रतीक के रूप में उपयोग में लिया है। धृतराष्ट्र, दुःशासन, द्रौपदी, कृष्ण आदि पात्र अंधेन्याय, दुष्टशासन व्यवस्था, प्रजा और त्राता–नेतृत्व को सफलतापूर्वक व्यंजित करते हैं।

ऐसी स्थितियों में परिवर्तन हेतु संघर्ष ही उपाय है। कवयित्री अंधकार से आतंकित न होकर मशाल थामे रखने का आह्वाहन करती है–

मित्र / मशालें थामे रहो / सुबह होने तक

ताकि रोशनी का कम्र नहीं टूटे।

हम जिन्दा हैं ! यह / दम नहीं टूटे।[32]

इस तरह अपने देश की अनेकता में एकता का निर्देश कर भेदभाव भुलाने का संदेश देती है यह कविता–

मेरी–तेरी सब की भाषा, तुतलाने की एक है,

ये माटी है माँ हम सब की रक्त हमारा एक है।

□ □ □

मेरी–तेरी सब की भाषा मुस्काने की एक है,

मुस्का के तू देख जरा बन्दे सारे ही नेक हैं।[33]

मात्र इस प्रकार से सामान्य उद्‌बोधन से बात नहीं अटकती। समकालीन कवयित्रीयों के सर्जन में कहीं आपको चिन्तन की गहराई मिलेगी तो कहीं मनोविज्ञान की बारीकियाँ भी। 'चेतना' शीर्षक कविता एक शाश्वत सत्य की ओर इंगित करती है–

सूर्य की रश्मियों को क्या / अपने तक आते देखा है? / देखा है बस उजाला / ऐसे ही आत्मा के बीज–कण को / क्या हमने देखा है? / देखा है तो बस उस चेतना को / जिसे आते नहीं / बस जाते देखा है।[३४]

यह चिन्तन का क्षेत्र मात्र आध्यात्मिक ही नहीं, समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक भी है। एक कणिका देखिए। थोड़े में कितना अधिक कह दिया गया है–

संधि के क्षण / बीत जाने के बाद,

युद्ध हो या न हो / शांति कभी नहीं रहती।[३५]

वस्तुतः नारी में नर से अधिक क्षमता है। वह शक्तिरूपा है। प्रकृति ने उसे हर दृष्टि से अधिक सक्षम बनाया है, परन्तु पुरुष प्रधान समाज ने उसकी मानसिकता ग्रस ली है। पुराण कथाएं स्पष्ट करती हैं कि जब देवताओं का दानवों से बस नहीं चला, तो लाचार हो उन्होंने देवी की स्तुति की। महाकाली, दुर्गा, महिषासुर–मर्दिनी कोई भी रूप क्यों न यह नारीशक्ति का उद्‌घोष है। यदि आज नारी अपने को कमजोर समझती है तो मात्र उसका कारण मानसिक 'कंडीशनिंग' ही है। इस तथ्य को एक कवयित्री ने इस प्रकार कहा है–

किसी भी नारी को / इतना कमजोर मत समझो

नारी / किसी न किसी क्षेत्र में

पुरुष से अधिक शक्ति / दिखा सकती है।

इसलिए तो उसे / महाशक्ति कहा गया है।[३६]

आलोच्य काव्य में शिल्प एवं अभिव्यक्ति कौशल में अनेक नवीनताएं ध्यानाकर्षक है। छायावादी, प्रगतिवादी, नई कवितावादी सभी प्रकार की रचनाएं उपलब्ध हैं। गीत, गजल, छांदस और अछांदस–विपुल काव्य नाना रूपों में मिलता है। एक प्रकृति दृश्य–

कितनी अरुणिम संध्याओं में, रजनी का शृंगार सजाने,
अंबुधि ने अपने अन्तर पर, अगणित कैसे दीप जलाये,
जल के झिलमिल प्रतिबिम्बों में, तुम देख रहे सागर सा दर्पण।
तुम देख रहे लहरों का नर्तन।[३७]

छायावादी चित्रण तो हमने देखा। अब है लोकगीतों सी सरलता प्रस्तुत कविता मे – साजन के वियोग में तड़पती प्रिया की उक्ति –

बैरन बन गई रात, सजन बिन चैन न आये राम।
दीप जले मेरे साथ, सजन बिन चैन न आये राम।

□ □ □ □ □

सारी नगरियाँ सोई रे, कंजरारी अँखियाँ रोई रे,
नींद को ले गये साथ, सजन बिन चैन न आये राम।[३८]

अनेक कवयित्रियों ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का प्रयोग लोककथा के तंतुओं को चिरन्तन सत्यों को स्पष्ट करने के लिए भी किया है। व्यक्ति से जुड़े कई वैश्विक प्रश्नों के उत्तर दर्शन के मार्ग से परन्तु कविता के माध्यम से तलाशे गये है। ऐसा प्रयोग है 'एक परी कथा'। कथा का जन्म कल्पना से होता है। कल्पना एक सुंदर स्त्री है जो सजधज कर बैठी है। उसके पास एक पालतू काली बिल्ली है, जो कल्पना से जुड़े अनिष्टों का प्रतीक है। इसे एक परीकथा के रूप में प्रस्तुत किया गया है –

एक सुनहरा महल, / सुनहरी रातें,

सुनहरी उसकी बाँहें, / सुनहरा खिलता चेहरा–

स्वप्नलोक के सातों पर्वत लाँघकर

आयेगा सफेद घोड़ा, गोरा सा एक राजकुमार[३९]

गुजरात के अनेक कवियों ने गीत और गज़ल में प्रयोग किये हैं। इनमें से प्रमुख– भगवानदास जैन, सुल्तान अहमद, दयाचंद जैन, अश्विनीकुमार पाण्डेय, द्वारिकाप्रसाद, सुरेश शर्मा कान्त, सुलभ धंधुकिया, रामचेत वर्मा, ऋषिपाल, धीमान, विजयकुमार तिवारी, नवनींत ठक्कर, अब्बास अली ताई, असोक नारायण, शिवा कनाटे, अरुणसिंह बारहट, भागवतप्रसाद मिश्र, धरमविजय पंडित, जोजफ अनवर, दिनेश देसाई आदि गिने जा सकते हैं। अन्य उल्लेखनीय रचनाकार हैं जादवजी पटेल, दिनेशचंद्र, शेखर जैन, कुंदनमाली, कैलाशनाथ तिवारी, हरीसिंह चौधरी, फूलचंद गुप्ता, रमेशचंद शर्मा, भगवतशरण अग्रवाल, अविनाश श्रीवास्तव, अंबाशंकर नागर, कमल पुंजाणी, किशोर काबरा, घनश्याम अग्रवाल, जयसिंह 'व्यथित', दयाचंद जैन, वसन्तकुमार परिहार, रमाकान्त शर्मा, मुकेश रावल, विष्णु विराट आदि। अनेक कवियों की रचनाएँ विभिन्न संग्रहों में तथा पत्रपत्रिकाओं में निकल रही हैं, उन सबका उल्लेख स्थानाभाव के कारण संभव नहीं हो पाया। मात्र जिनके स्वयं के स्वतंत्र काव्यग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, उन्हीं का उल्लेख संभव हुआ है। इसी प्रकार जिन कवियों पर समीक्षात्मक आलेख शामिल किये गये हैं, उनके उदाहरण यहाँ देने से बचा गया है ताकि व्यर्थ का दुहराव न हो। खैर।

गजल के क्षेत्रों में अनेक कवियों ने शीन–काफ दुरुस्त गज़लें दी हैं, तो अनेक मित्रों ने गजलनुमा प्रयोग किये हैं। काफिया, रदीफ, मत्ला, बहर आदि में थोड़ी छूटछाट भी ली है। परन्तु प्रश्न मूलतः काव्यचेतना का है। यदि अभिव्यक्ति सक्षम है तो स्वीकार्य

होनी चाहिए। छंदशास्त्र का इतिहास स्वयं ही सूचक है। समय समय पर नवोन्मेष आता रहा है और नये छंद अस्तित्व में आयें हैं। छंदमुक्त काव्य का अभिर्भाव भी हुआ है। अतः हम इस दृष्टि से यहाँ चर्चा न कर मूलस्वर की ओर ध्यान देंगे।

देश की आजादी के साथ जनता को लगने लगा कि अब हम स्वतंत्र हो गये हैं। अब हमें शोषण से मुक्ति मिलेगी पर शीघ्र ही उसका मोहभंग हो गया। देश को आजाद हुए पचास वर्ष से अधिक हो गये पर हमारी स्थिति सुधरने के स्थान पर बिगड़ती चली गई है।

दूध असली न घी ही असली है,
जोश सबका ही हो गया ठंडा !
मूलियाँ मिर्चियों सी लगती हैं,
और गन्ना लगे है सरकंडा।[४०]

कारण स्पष्ट है – हमारे नेता मात्र बयानबाजी में और अपने स्वार्थ साधने में रचे पचे हैं।

ये भाषणवाले, कागजी घोड़े दौड़ाते हैं।
अनुभव किये बिना, किसी के लिखे को सुनाते हैं।

* * * * *

ये बनाते उल्लू, घड़ियाली आँसू बहाते हैं।
ये भाषणवाले, कागजी घोड़े दौड़ाते हैं।[४१]

इसी स्थिति से दुखी होकर कवि कह उठता है–

जित देखो उत ठग ही ठ़ग है,

काँटे भरे यहाँ सब मग हैं।

चित के ठग हैं, वित्त के ठग हैं,

नयनों के, बयनों के ठग हैं।[४२]

अपना स्वार्थ साधने के लिए हर व्यक्ति, छल–कपट का सहारा लेता है। हम जीवनमूल्यों को बिसार मात्र भौतिक सुखों के पीछे पागल हैं, पर सुख तो दुर्लभ है। इस स्थिति का आलेख है –

झूठ की मैली चादर ओढ़े फिरता है इंसान।

भीतर तो है झूठ सरासर ऊपर है भगवान।

दिल का दरपन दरक गया है, मन का मोती बिखरा।

इंसानों में सच्चाई का सच्चापन ना निखरा।

भौतिक सुख में डूबा इन्सां फिरता है बेजान।[४३]

आजादी के बाद देश ने बड़ी तरक्की की है इस तरह के नारे राजनेताओं द्वारा उछाले जाते हैं, पर सच्चाई यह नहीं है। काल तो अपने ढंग से गुजरता रहा है पर परिणाम जैसा चाहिए वैसा नहीं मिला है। कवि हृदय इसे देख व्यथित है। वह आक्रोशपूर्वक कहता है –

यह झूठ है / हम बहुत आगे आ चुके हैं

हमारे पाँव भले ही आगे आ चुके हों / अगली सदी की दहलीज़ पर

हम / अपने सिर वहीं भूल आये हैं

जहाँ से फूटती हैं / भेद भाव की बदबूदार धाराएं–[४४]

देश में दुर्भिक्ष पड़ते हैं। भुखमरी से अनेक प्राण जाते हैं। हमारे नेता मात्र बहस करते रहते हैं। कमेटियाँ बिठा चर्चा करते हैं कि इतनी बडी संख्या में हुई मौतों का कारण क्या है, पर वस्तुतः किसी को कुछ पड़ी नहीं है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी इस देश का नागरिक सामान्य जीवन की जरूरतों के लिए व्याकुल है। होने वाली चर्चाओं पर व्यंग्य–

किस्मत ने लिखी / भूख की कहानी
लेकर आँसू की स्याही / काम में
अब मौत चाहे / भूख से हो या कुपोषण से
क्या रखा है नाम में?[४५]

कवि का संवेदनशील ह्रदय यह स्थिति देखकर करुणार्द्र हो उठता है। वह हमारे भीतर की मानवता जगाने कह उठता है –

नंगे बदन, मुरझाई नजर,
जिन्दगी भर रहे जिनके प्यासे अधर
यार मेरे कोई शरम तो करे।
इन अभागों पर कोई रहम तो करे।[४६]

यही बात दूसरे ढंग से व्यक्त हुई है –

खुदगर्ज जमाने ने दौलत को खुदा माना।
मुफलिस से करो प्यार तो एक बात कहूँ।[४७]

पर किसे फुरसत है, यह सब देखने विचारने की। आज के अर्थ प्रधान युग में हरकोई पैसे के पीछे पागल है। कवि तो संवेदनशील होता है। एक तिनके का कुचला जाना भी उसे अखरता है। वह जड़–चेतन सभी की व्यथा को गुनता है, अनसुनी करती नहीं। पर आज का कवि भी मात्र अर्थोपार्जन की ही बात सोचता है। यह कटु सत्य उजागर है इस कथन में –

कहने को सूर्य–पुत्र बंदी अंधेरे के,

रचते अब छंद नहीं स्वर्णिम सवेरे के।

शब्द शब्द अर्थ बना अर्थ–हेतु लिखते हैं,

भीतर कुछ और और बाहर कुछ दिखते हैं।[४८]

तब नौकरीपेशा व्यक्ति को तो क्या कहना। आर्थिक बाध्यता के कारण दिनभर कार्यालय में काम करने और रात देर से आने पर भी उसे दूसरे दिन छुट्टी होने पर भी दफ्तर जाना है। साहब का आदेश जो है, उससे बड़ा आदेश है आर्थिक स्थितियों का। लाचार जो है –

रात को देर से पहुँचने के बावजूद

पत्नी जल्दी जगा देती है

पीठ थपथपाती है–

यहीं क्या करोगे?

बच्चे के जूते फट गये हैं

ओवरटाइम तो मिलेगा

और सब्जी टूथपेस्ट का आर्डर देकर

दरवाजे तक छोड जाती है।[४९]

देश के जनसाधारण की स्थिति तो वैसी ही रही है, जैसे पहले थी। आजादी मिल जाने पर भी कोई खास फर्क नहीं पड़ा–वर्तमान सरोकार की ग़ज़ल का यह शेर देखिए–

देश तो आजाद है, पर हैं कहाँ आजाद हम

साँस खुलकर लें जहाँ, ऐसा ठिकाना चाहिए।[५०]

हमारी इस हालत के लिए हम सभी जिम्मेदार हैं। नेता लोग तो मात्र बातें बनाते हैं, पर उन्हें चुनकर संसद या विधान सभाओं में भेजनेवाले तो हमीं प्रजाजन हैं। खेद हैं हम जागृत मतदाता नहीं है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय, गुंडों का भय, पैसों का लालच और ऐसी अनेक खराबियाँ हैं जिनके कारण यह दुःखद स्थिति बनी है।

कल तक जो गाते जाते

गुणगान सभी हमदर्दी के,

आज वही चिल्लाते हैं

अधिकार रचा कर कुर्सी के।

अतः हे मतदारों –

मत को मत डालो कूड़े में,

मत का मोल बड़ा है भारी,

मत के ऊपर टिक पाई है,

लोकतंत्र की नींव सारी।[५१]

लोकतंत्र का आधार हमारी चुनी हुई संसद है। पर हमारी संसद कहाँ है जनता की व्यथा के प्रति जागरूक। इसी से कवि गुहार लगाता है 'संसद बदलनी चाहिए।' प्रस्तुत काव्याश में मिथकीय पात्रों के माध्यम से कवि ने अपनी बात चोटदार ढंग से प्रस्तुत की है–

देवकी जो जन्म से ही कैद कारागार में,
आज बंधन तोड़कर बाहर निकलनी चाहिए।
कब तलक देगी परीक्षा राम के दरबार में,
जानकी नवक्रांति के साँचे में ढलनी चाहिए।

* * * *

कब तलक कानून पहनेंगे नए चेहरे यहाँ,
वक्त की है माँग यह संसद बदलनी चाहिए।[५२]

राजनीति के समान ही हमारा धार्मिक परिवेश दूषित है। हमने भगवान को मंदिर, मस्जिद, उपासनागृह, चर्च, गुरुद्वारे में बन्द कर रखा है। जो अग–जग का नियंता है, वह पंडे, पुजारी, मौलवी, पादरी आदि के मार्फत जेल में बन्द है। व्यंग्य की तीव्रता देखिए– पुजारी कहता है–

'यह जेलखाना नहीं है।
हमने तो अपने निर्माता का मंदिर बनाया है।'
और रोज जेल में कैद भगवान की पूजा करने लगा
जैसे कंस अग्रसेन की पूजा करता था।[५३]

यहाँ अग्रसेन, कंस आदि मिथकीय प्रतीक अनजाने में बहुत कुछ कह जाते हैं। धर्म को परिभाषित करते हुए कवि बतलाता है–

धर्म क्या है? / मैं क्या कहूँ? चलो कहूँ।

मत पूछना संत महंत या सम्प्रदाय के ठेकेदार को

पर पूछिए.... द्वार खड़े भिक्षुक को / कि धर्म क्या है?

शहर के कूड़े करकट में

नवजात शिशु को छोड़नेवाली आधुनिक कुन्ता से

पूछिए.... धर्म क्या है?[५४]

धर्म के थोथे आदर्शों के नाम कितने कितने निर्दोष बलि चढ़ जाते हैं। कितनी विवशता मुखर हो उठी है। उपरोक्त पंक्तियों में जो हमें अपने व्यवहार के बारे में सोचने को बाध्यकर देती है। और यह सोच अंततोगत्वा दार्शनिक भूमिका ग्रहण कर लेता है–

इस मिट्टी से जन्मी काया,

इस मिट्टी में जानी है।[५५]

इस निर्वेद की भावना के बावजूद कवि ह्रदय आशावादी है। उसे मानव मात्र में शिवत्व नजर आता है और मंगल भविष्य की कामना करता है। क्योंकि श्रेय हेतु अपने को उत्सर्ग करने की भावना आज भी मौजूद है–यथा 'साध' शीर्षक यह काव्य देखिए–

फूल का खिलना / नदी का / सागर से मिलना /

महज़ इत्तफाक़ नहीं है /

अपने आपको मिटाने की / एक साध / युग युगान्तर से निरंतर है /

यही प्रकृति है /यही जीवन मंत्र है /[५६]

सृष्टि के कल्याण हेतु अपने को मिटा देने की भावना ने ही तो मानव में शिवत्व का संचार किया है। आज के कवि को इस मानव में आस्था भी है–

मानव ही मेरा शिव है, इसे छोड़ मैं किसको ध्याऊं।

शक्ति उसीकी मुखरित जागती, उससे क्या मुख मोड़ मैं जाऊं।

अखिल प्रकृति है मंदिर उसका, यदि बन पाये तो उसे बनाऊं।[५७]

यह तो हुई कथ्य की बात, समाजिक सरोकार एवं काव्यादर्श की बात। पर समसामयिक गुजरात की हिन्दी कविता में परम्परा के साथ ही प्रयोग–धर्मिता का सुभग समन्वय देखने को मिलता है। कथ्य के साथ ही छंद–विधान, उक्ति वैचित्र्य, प्रतीकों एवं बिम्बों का सुनियोजन हमें देखने को मिलता है। हमारे गजलकारों ने परम्परागत प्रणयभाव को तो गजल का उपजीव्य माना ही है, साथ ही में कथ्य में वैविध्य भी अपनाया है। यही नहीं गजल की बंदिश में अनेक प्रयोग छंद की दृष्टि से भी किये हैं। परम्परागत प्रणयभाव की अभिव्यक्ति देखिए–

आँखों से दिल में, दिल से जिगर में उतर गई।

तस्वीरे–यार देखो, किधर से किधर गई।[५८]

गजल के शिल्पगत वैविध्य के संदर्भ में एक नाम सब से अधिक उभर कर आता है, वह है ऋषिपाल धीमान का। इस कवि ने अपनी गज़लों में संस्कृत छंद (भुजंगप्रयात, गीतिका आदि), उर्दू छंद (बहरे मुज़ारे, रमल आदि) तथा हिन्दी मात्रिक छंदो का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। साथ ही में कथ्य में व्यंग्य, भावप्रवणता तथा जीवन से सरोकार भी दीख पड़ता है। इस शेर की मार्मिकता देखिए –

इक भूख से बिलखते, बच्चे ने माँ से पूछा–

'क्या सच में हम नहीं हैं, हकदार जिन्दगी के?'[५९]

इस प्रयोगधर्मिता ने हमारे अनेक गीतकारों को लोकगीतों की धुन, कथ्य एवं तरलता ने इतना प्रभावित किया है कि वे भी उसी धारा में मानों बहने लगे यथा–

कान्हा तूने चूनर मोरि भिगोई !

बार बार पिचकारी छोड़ी, रंग में ताहि डुबाई।

अंग अंग रंग में डूब्यो है, काया मोरि भिगोई।[६०]

ये पंक्तियाँ अपनी सरलता में काफी कुछ कह जाती हैं। इसी प्रकार अनेक कवियों ने आज की स्थिति को पुराने पात्रों के माध्यम से व्यंजित ही नहीं किया है अपितु विद्रोह के स्वर में भी। कथ्य संबंधी जो प्रयोग हुए हैं, वे भी नाना प्रकार हैं। हमने इससे पूर्व मिथकीय पात्रों, परंपरागत बिम्बों एवं प्रतीकों के उपयोग के अनेक उदाहरण तो देके ही हैं। परन्तु साहित्यिक कृतियों के पात्रों, उक्तियों एवं शब्दावली का कुछ इस प्रकार से प्रयोग करके नई अर्थमत्ता उभारने का यत्न भी दृष्टव्य है। जादवजी पटेल की 'पहचान' कविता नारी–विद्रोह को एक नये अंदाज में प्रस्तुत करती है। 'गोपा', 'यशोधर', 'राधिका', 'विष्णु प्रिया', 'कामायनी' आदि शब्द प्रयोग एक नवीन चमत्कृति तो सर्जते ही है, साथ में नया भावबोध भी जगाते हैं।[६१]

इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि गुजरात का साठोत्तरी हिन्दी साहित्य सृजन अत्यन्त समृद्ध रहा है। डॉ. हरीश शुक्ल इस समृद्ध साहित्य सृजन के संदर्भ में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

गुजराती की समकालीन हिन्दी कविता मुख्य रूप से मुक्तक कविता प्रबंध, ग़ज़ल, हाइकु एवं बाल कविता के रूप में आई। इसके संवर्धक अनेक कवि, कवयित्रियाँ अपने प्रकाशित ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं तथा सम्पादित काव्य संग्रहों के माध्यम से प्रकाश मे आए। ये कवि सम्पूर्णतः ईमानदारी और निष्ठा के सजग प्रहरी हैं और अपनी लेखनी के प्रति सक्रिय। उन्होंने भारतीय संस्कृति, आदर्श और अस्मिता को रूपायित किया है। इनकी अभिव्यक्ति में गहन दार्शनिकता और आध्यात्मिकता है। ऐसे कवियों में डॉ. अम्बाशंकर नागर, डॉ. भगवतशरण अग्रवाल, डॉ. घनश्याम अग्रवाल, डॉ. रामकुमार गुप्त, डॉ. किशोर काबरा, डॉ. रमाकांत शर्मा, डॉ. निर्मला आसनानी, डॉ. कमल पुंजाणी, अविनाश श्रीवास्तव, डॉ. सुधा श्रीवास्तव, विष्णु चतुर्वेदी, भागवतप्रसाद मिश्र 'नियाज', नलिनी पुरोहित, दयाचंद जैन, बसंतकुमार परिहार, जयसिंह 'व्यथित', भगवानदास जैन, द्वारकाप्रसाद साँचीहर, डॉ. अरविन्द जोशी, शकुन्तला मेहता, डॉ. सुभाष भाटिया, आत्मप्रकाश, डॉ. कमलेश सिंह आदि की कविताओं को विशेष रूप से देखा और परखा है।

गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता भाषा, भावबोध एवं मूल्यबोध की दृष्टि से अत्यंत संश्लिष्ट है। इस कविता की प्रमुख विशेषताओं में – इसमें जीवन और जगत को बौद्धिक चिंतना से देखने का प्रयास हुआ है, साथ ही शोषण, दमन के विरोध का स्वर भी उतना ही उग्र है। वर्तमान व्यवस्था के प्रति आक्रोश और परिवर्तन का आग्रह भी उतना ही है। प्रेम, सौन्दर्य और जीवन दर्शन के साथ अन्यान्य समसामयिक एवं सनातन सत्यों और परपराओं को भी उजागर किया गया है। कुछ कवियों ने राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र भक्ति, और राष्ट्रीय शिखरों की सक्षम अभिव्यक्ति द्वारा अपना परम दायित्व निभाया है। साथ ही सत्ता की राजनीति के कारण पिछले दो दशकों से मूल्यों का जितना ह्रास होता आ रहा है,

पहले कभी नहीं हुआ। ढहते हुए प्राचीन आदर्श, बिगड़ते हुए नैतिक मूल्यों और मिटती हुई मर्यादाओं के बीच टूटता–सा विवश मानव की दिशाहीनता के कुछ विरूप दृश्य–

जन्म से लेकर मरण तक दौड़ता है आदमी,
दौड़ते ही दौड़ते दम तौड़ता है आदमी।[६२]

* * *

आज सूरज की
डूबती किरणों से / एक नया पाठ सीखा हूँ–
लोग उगते सूरज को सिर झुकाते हैं।[६३]

शोषण का डटकर विरोध करती जनवादी कविता देखिए–

चोर, उचक्के और भ्रष्टाचारी / खुले आम, देश को लूटते हैं /
यह प्रजा / मूक तमाशाबीन बन देखती है।[६४]

वर्तमान व्यवस्था के प्रति आक्रोश, अत्याचार, आतंकवाद और राजनैतिक अधःपतन की यथार्थ अभिव्यक्ति –

हम सब शतरंज के मोहरे हैं / कोई फर्जी है /
कोई प्यादा है / नाम रूप अलग–अलग /
न कोई कम / न कोई ज्यादा है।
'हम सब शतरंज के मोहरे हैं'[६५]

इस बौद्धिकता, शोषण–विरोध तथा आक्रोश की एकसूत्रता में भी मूल्य बोध है, क्योंकि यह कविता हताशा और निराशा की कविता नहीं, अपितु आस्था और विश्वास की

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

क़विता है। गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता के कवियों की यह दृढ़ मान्यता रही है कि इस अत्याचार, भ्रष्टाचार की आत्मघाती स्थिति मानव अंधकार एक दिन छटेगा और उज्ज्वल प्रकाश विकीर्ण होगा, मानव जीवन सुखमय होगा। इस प्रकार यह कविता नवनिर्माण की कविता है। कटु यथार्थ, जीवन की जटिलता, उग्रता, छटपटाहट और कुंठा–संत्रास के होते हुए भी बदलाव, नवनिर्माण के प्रति आस्थापूर्ण अभिव्यक्ति की कविता है–

कब तक कराते रहोगे तुम / भौतिकता की कारा में / तोड़ो यह लौह श्रृंखला सस्तेपन से मुंह मोड़ो।[६६]

अंधकार से प्रकाश का / युद्ध है जीवन / धर्म से अर्धम का / सत्य से असत्य का / नीति से अनीति का / संघर्ष है जीवन।[६७]

किताबी क्रांति / और मौखिक सदाचार की डुगडुगी /
बजाना बंद कर देखो। कब से झूठ की ड्यौढ़ी पर /
हर सनातन सच / श्वान–सा दुम हिला रहा है।[६८]

मैं तूफानों का दीप, सदा जलाता आया। / मैं अंधकार की आँखों में खलता आया।।[६९]

* * *

एक ही स्वान / हंसता गाता प्रातः / देश में उगे।[७०]

डॉ. अग्रवालजी भूख, बेकारी, बीमारी, मान, अपमान, धर्म और सेक्स (वासना) इन महारथियों के चक्रव्यूह में फंसी विवश मानवता का यथार्थ चित्र, फिर भी नवोन्मेष –

चक्रव्यूह तोड़ने की अधूरी कथा – मत सुनाना !!! / जिससे भविष्य का

अभिमन्यु / अपना रास्ता / स्वयं बना सके।

'चक्रव्यूह' परिताप के क्षणों में ही बदलाव के प्रति आस्था है, आशावाद का महामंत्र डॉ. किशोर काबरा के शब्दों मे –

प्रौढ़ता के पूर्व सारी वासनाएँ तृप्त होकर / बदल देंगी ध्येय अपना। /

और मानव–जाति के ऊँचे महत्तम लक्ष्य को ही / मान लेगी श्रेय अपना,

प्रेम अपना

* * *

फिर कोई समस्या देश को या विश्व को / पीड़ित करेगी?[७१]

प्रत्येक राष्ट की अपनी परम्परागत संस्कृति होती है, जिसका निर्माण वहाँ के महापुरुषों के जीवन–मूल्यों के आधार पर होता है। उन मूल्यों के आधार से ही उनका चरित्र एवं व्यक्तित्व गौरवशाली बनता है। संस्कृति का शब्दकोशीय अर्थ है – संस्कारगत परिष्कार। कोई भी राष्ट्र धनशक्ति के बल से महान नहीं बन सकता बल्कि श्रेष्ठ चरित्रवान नागरिकों एवं शासकों के बल पर ही बनता है। इस सत्य की प्रतीति डॉ. रामकुमार गुप्त की मिट्टी की तासीर कविता में दृष्टव्य है :

– ओसामा बिन लादेन ! काश, तुम मेरे देश में जन्मे होते।

इसी प्रकार डॉ. अम्बाशंकर नागरजी के कंडु और प्रम्लोचा के पौराणिक आख्यान के माध्यम से मानव मन की गहराइयों में झांककर संस्कृति और बद्ध मूल संस्कारों का परिणाम दिखाया है। ऋषि का प्रत्यभिज्ञान होना, जिससे मोह भंग और आसक्ति से विमुख होना परम्परागत संस्कारों का ही परिणाम है। मूलभूत आदि संस्कारों के उदय का यह क्षण ही नर को नारायण बनाता है –

आज तुम्हें मान हुआ– / चार प्रहर बीत गए / मानो चार क्षण से।

○ ○ ○

सोये थे महर्षि / तुम जिस मोहनिद्रा में /

उससे संस्कार वश / आह तुम जाग गए।[७२]

सहस्त्रों वर्षों के बाद भी कंडु ऋषि को प्रत्यभिज्ञान होना और उसके परिणामस्वरूप मोहभंग एवं आसक्ति से विमुख होना उनके संचित संस्कारों और धरती का प्रताप है,

विविध–विधान से / कर्म ज्ञान, इच्छादिगुणों का / तिरोभाव था हुआ, /

आविर्भाव / हो गया है अब / उन सभी गुणों का / संस्कारोदय से।

युगों से पद–दलित नारियों को जगाना, आगे बढ़ाना, उनके शक्ति स्वरूपा व्यक्तित्व को समझना और भविष्य निर्माण के कार्य में उन्हें निमित्त बनाना आदि नारी जागरण प्रधान कविताओं में भी मूल्य बोध ध्वनित हुआ है,

बढ़ चलो वीरांगनाओं, / पंख पैरों में लगा लो। / हाथ में भर लो हवाएँ, /

सूर्य को आँखों में भरकर / दूर, केवल दूर देखो।[७३]

नागरजी ने भी नारी को पुरुष की अपेक्षा अधिक महान प्रमाणित किया। प्रम्लोचा का उदात्तीकरण अपने दायित्व को निभाने में एवं महर्षि कण्डु के क्लेश का परिहार करने में दृष्टव्य है –

छिन्न करो। अब अपनी कुंठाएँ / उन्मुक्त करो। अंतर के रुद्ध द्वार व्यष्टि

साधना छोड / समष्टिहित तपो तपस्वी /

नारी सती है, अर्धांगिनी शिव की सती–शक्ति है– इस शक्ति बोध का स्वर साहित्य संहिता में छपी 'शिवसती' कविता में दृष्टव्य है,

खोलो / खोलो तीसरा नेत्र / खोलो इस दिल के द्वार / हो जाने दो ताण्डव / गिरेंगे टुकड़े इस देह के जहाँ / हजारों सतियों के सत्य का / प्रकोप जागेगा

o o o

इस देश का उद्धार करने के लिए / चाहिए एक सती / बस / एक ही सती /[७४]

भारत की भूमि सनातन खण्ड है, यह देवभूमि है। आदि–संस्कृति की वाहक धरनी है। सम्पूर्ण देश को मातृभूमि कह कर गौरवान्वित किया गया है। राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्र की ऐसी कविताएँ किशोर काबरा, हरीसिंह चौधरी, जयसिंह व्यथित तथा घनश्याम अग्रवाल की कविताओं में देखने को मिलती हैं जिनमें रोमांचित करने वाली भावनाएँ मिलती हैं –

एक स्वर मेरा मिला लो / कौन हिन्दू और मुस्लिम? / क्या रही पहचान इसकी? / एक ही प्राण है प्राण पलता / ज्योति दिल में जलती[७५]

* * *

देश हमारा, वन्दन इसको, इसकी माटी चन्दन है।[७६]

राष्ट्र के प्रति उत्कट प्रेम के उद्गार देखिये जिसमें नर–नारियों को जगाने का अह्वान–शंखनाद व्यक्त हुआ है।

ऐसा व्रत, ऐसा लक्ष्य लिये / वे वीर धरा पर आये थे। / केवल इस हेतु उन्होंने सर / बंदी ! हँसकर कटवाये थे।[७७]

गुजरात के समकालीन कवियों ने प्रेम, सौन्दर्य और ग्रामीण संस्कृति को भी विशेष महत्व दिया है। आज मानव की मूल प्रकृति विस्मरण और आसान विकृति का दर्शन अधिक हो रहा है। प्रेम के स्त्रोत सूखते जा रहे हैं, इसकी चिंतना भी है तो आत्मा के धरातल पर होने वाली प्रेम की गहरी अनुभूति के दर्शन भी होते हैं –

तुमसे मिलकर। अक्सर मुझे। ऐसे महसूस हुआ है कि जैसे सुरतरू। मेरे गुलदस्ते में उगा है। और कामधेनु तथास्तु कहती। मेरे द्वार खड़ी है।[७८]

प्रेम का व्यापक रूप राष्ट्र प्रेम के साथ गाँव और ईश्वर के प्रति व्यक्त हुआ है–

ऐ मेरे गाँव मेरे प्यारे गाँव
फिर तेरी याद मुझे आई है।[७९]

* * *

सरसों–सी खिली धूप में / .दूर धान के पके खेतों के बीच।
अपनी मासूम हँसी को छोड़।
धुएँ के शहर में चला आया हूँ।[८०]

मिट्टी से संबंधित जीवनमूल्यों में कृषकों एवं श्रमजीवियों का भोलापन, निष्पाप व्यक्तित्व उभर कर आया है।

पहले शास्त्र जीतता है। / फिर शस्त्र, / अन्त में श्रम का ही होता अभिनंदन।[८१]

डॉ. काबरा ने भरत के नंदीग्राम वास को कृषि संस्कृति का पर्याय बताया है। साथ ही धनुष भंग की प्रतीकात्मकता द्वारा निःशस्त्रीकरण एवं युद्ध की व्यर्थता का मूल्यबोध प्रभावी ढ़ंग से व्यक्त किया है। 'नरो वा कुंजरो वा' के द्रोण के प्रति इस कथन में श्रम की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है।

नहीं भीख में मिलता कोई सिंहासन है / श्रम करके जीवन में सब पाना होता है, मिट्टी की मुट्ठी से दो दाने लेने को मिट्टी के कण कण में मिट जाना होता है।[८२]

ईश्वर प्रेम सर्वोपरि प्रेम है, जिसकी रीत ही उल्टी है –

प्रेम पंथ में आय के देखी उलटी रीत /

ज्यौं ज्यौं हरि भाजन चहत, त्यौं त्यौं बढ़ती प्रीत।

○ ○ ○

जीवन के चिर सत्य को समझने और प्राप्त करने की उत्कंठा – / जीवन का चिर सत्य सदा ही रहता है छिपकर अनजाना, / जो अनपहचानी राहों गुजरा उसने ही पहचाना।[८३]

आज का आदमी स्वकेन्द्रित हो गया है। अन्दर झाँकने के लिए अपने अहम् को जलाना–पिघलाना पड़ता है। प्रथम अहम् की पूँछ का अहसास तो हो। न मार्ग है, न ज्ञान है –

धरती का पुत्र हूँ, । नहुष हूँ पापों का,

अहं की कारा में, । बन्दी हूँ तृष्णा का।[८४]

महाकाल के मस्तक की शोभा बढ़ाने के लिए डॉ. काबरा जी ने अपने अहम् को चंदन की तरह घिसा है–

घिस गया इतना कि चंदन हो गया हूँ।

झुक गया इतना कि वंदन हो गया हूँ।।[८५]

सुधा श्रीवास्तव दंशों के घेरे में अहम् की राख बनाकर प्रिय चरणों में समर्पित करना चाहती हैं।

– कि अहम् राख होकर / प्रिय चरण में। भेंट होकर/ अर्चना का फूल

बनकर / पास पंहुँचे फिर तुम्हारे /

जीवन और जगत में सर्वत्र की आनंद परिव्याप्त है, किन्तु मानव अंहकारवश विरल अनुभूतियों से वंचित रह जाता है –

जीवन में। निर्मल मधुर हास्य है। वरदान है ईश्वर का /

मगर अफसोस, अहम् की मुट्ठी में। बन्द है खुशी का खजाना।[८६]

इसलिए कि कबीर की तरह हम अपनी चदरिया को गन्दी होने से बचा नहीं पाए–

ओढ़कर कबीरा ने ज्यों की त्यों धर दीनी

हमने ही ओढ़–ओढ़ गन्दी क्यों कर दीनी?[८७]

जीवन, मृत्यु, असार संसार की क्षणभंगुरता, प्रकृति का ताण्डव, और डिगती हुई हमारी आस्थाओं के बीच आत्मचिंतन द्वारा उनके रहस्यों की अभिव्यक्ति में मूल्य बोध समकालीन कविता में व्यक्त हुआ है। प्रकृति की विनाशकारी लीला ताण्डव के बीच आज का मानव विवश है–

वैज्ञानिक तकनीकी के,

सारे बाँध टूट गए / अपनी असमर्थता पर,

सारा जग। मुँह बाये देखता रहा।

जिसके बनने में / लगे हैं सहस्त्रों वर्ष,

जिसके मिटने में, एक क्षण काफी था।[८८]

संसार की क्षण भंगुरता के प्रति कवयित्री का साक्षीभाव –

दुनिया नाटक की तरह, देख उसे दिन चार।

चले गये कुछ, और कुछ जाने को तैयार।।[८९]

डॉ. सुभाष भाटिया की 'पिपासा' में भी यही स्वर है –

रेत–सा तन मेरा / तन मेरा, / सरक रहा मेरे हातों से / कण–कण हो रहा / हवन मेरा।

आज का इन्सान–असली इन्सान खो गया है। आज भगवान भी शायद उसे ढूँढ़ रहा है –

बहुरूपियों के इस देश में / असली इन्सान खो गया है कहीं– / आओ / हम सब मिलकर उसे ढूँढ़े / धुँध से भरी उस घाटी में– / शायद / मोमबत्ती लिए / वह भी / हमें ढूँढ़ रहा हों कहीं?[९०]

नवनिर्माण के प्रति आशावाद और कर्तव्य के प्रशस्त मार्ग के अन्वेषण के स्वर –

मूल्यों की दुनिया में फिर से सँवरने

हमको किसी हाट बिकना पड़ेगा

सावन की झर–मर फिर से बरस ले

धरती को यह ताप सहना पड़ेगा।

– 'परिदृश्य'

इन अपरिहार्य क्षणों में परमात्म हस्तक्षेप भी उतना ही आवश्यक है –

तेरी सत्ता का फिर से प्रलयंकर डमरू बाजे,

तू फिर से जागे / बस तू ही / तू ![९१]

विज्ञान की चकाचौंध और उपभोक्ता संस्कृति की लोलुपता ने जीवन मूल्यों को तहस-नहस कर दिया है। इस निराशा के घोर अँधकार में प्रकाश और मुक्ति का मार्ग दिखाने अवतरित परमात्मा-शक्ति को पहचान कर, मानवता के कल्याण मार्ग में अग्रसर होने के लिए अपनी आत्मा का उदात्तीकरण एवं विस्तार आज के समय की पुकार है। इसे आज का जाग्रत कवि और साहित्यकार ही सुन सकता है –

झरना बनने निकली थी / नदी बन गई / और एक दिन / समुद्र से जा मिली[९२]

और फिर –

चिंतन की हो लेखनी, दिल की बने दवात।

करुणा का कागज़ मिले, लिखा करूँ दिन रात।।

○ ○ ○

मन को करके बाँसुरी भर ले उसमें गीत।

तेरे सुनकर गीत वह बन जायगा मीत।।[९३]

मूल्यों के उस परम स्त्रोत परमात्मा को मीत बनाकर उससे मिलन के लिए अन्तिम प्रसाधन (आत्मा का श्रृंगार) का परम संतोष व्यक्त करती कवयित्री कहती हैं –

सोई हूँ इस समय मृत्यु शय्या पर /

सुख से जा रही हूँ / हाथ पकड़े अपने प्रिय का / हाथ में।[९४]

भारतीय जीवन मूल्यों का महत्वपूर्ण तत्व है – वैयक्तिक उदार–चरित्र। धर्म का अर्थ ही धारणा है, विशुद्ध आचरण ही धर्म है। धर्म के इस वास्तविक स्वरूप को केन्द्र में रखकर गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता का स्वर गरिमा युक्त बन गया है। इसी मे भारतीय सदाचरण प्रधान अस्मिता के दर्शन होते हैं। इस प्रकार गुजरात की समकालीन कविता बहुआयामी है। इसमें युगीन यथार्थ और शास्वत सत्य के सम्बन्ध का निचोड़ है। युगीन जीवन को उसकी समग्रता में देखने का सशक्त सुप्रयास है। मूल्यबोध से परमात्म बोध तक का विस्तार इसमें समाहित है।[१५]

वैसे तो गुजरात में सृजित हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा पद्य की ओर ही अधिक आकर्षित रही है, किन्तु गद्य की भी अनेक विधाओं में यहाँ साहित्य सृजन सम्पन्न हुआ है। कहानी, उपन्यास, समीक्षा, शोध, ललित निबंध आदि विधाओं में भी यहाँ विपुल साहित्य उपलब्ध होता है।

हिन्दी काव्य सृजन में हिन्दी की ग़ज़लें भी यहाँ ध्यानाकर्षक रही हैं। यहाँ अनेक उर्दू एवं गुजराती के वरिष्ठ ग़जलकारों के समान्तर हिन्दी गज़लें भी विविध रूप एवं रंगों में लिखी जाती रही हैं।

परम्परा की दृष्टि से भले ही हम आज हिन्दी गज़ल की प्राचीनता पर गर्व कर लें, किन्तु वास्तव में हिन्दी गज़ल को राष्ट्रीय स्तर पर संगठित रूप दुष्यंत के बाद ही मिला। हिन्दी कविता के क्षेत्र में गज़ल के नये तेवर के साथ दुष्यंत कुमार त्यागी का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। सर्वहारा वर्ग की पीड़ाओं, आम आदमी की समस्याओं एवं राजनीतिक विसंगतियों को सर्वप्रथम दुष्यंत ने ही हिन्दी में गज़लों के माध्यम से अत्यंत प्रभावी एवं सशक्त रूप में व्यक्त किया। दूसरे शब्दों में दुष्यंत ने वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था के शोषणचक्र के खिलाफ गज़ल का प्रयोग एक हथियार के रूप में किया। परिणाम स्वरूप

समूचा हिन्दी काव्य–जगत दुष्यंत की गजलगोई और उनके तीखे व तल्ख अंदाजे बयाँ से प्रभावित हुआ औरएक पुरअसर काव्य–विधा के रूप में ग़ज़ल के प्रति आकृष्ट हुआ। प्रकारातर से हम यों भी कह सकते हैं कि अमीर खुसरो की कलम से निकली हुई हिन्दी ग़ज़ल की सूक्ष्म और विरल दारा दुष्यंत के बाद जैसे एक महासागर बनकर तरंगायित होने लगी। ग़ज़ल का स्वरूप भी अब सरापा बदल गया। आज ग़ज़ल न तो सागरोमीना की खनक के साथ शराब ढालनेवाली मयख़ानों की साक़ी है, न रंगीन मेहफ़िलों को सजाने–सँवारनेवाली रक़्क़ासा है और न ही इबादगाहों की पर्दानशीन पुजारिन ही है, बल्कि आज तो वह एक वीरांगना की भाँति अपने हक़ों से महरूम और मजलूम अवाम के बीच आकर खड़ी है और मुस्तहक़ लोगों के अधिकारों के लिए खुलेआम सिंहनी की तरह हुंकार कर रही है तथा लगातार वर्तमान विषमतापूर्ण व्यवस्था से जूझ रही है। संक्षेप में व्यवस्था के ख़िलाफ विद्रोह ही आज ग़ज़ल का प्रमुख स्वर हो गया है।

दुष्यंत के बाद हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण प्रतिभाएँ सामने आईं। कुँअर बेचैन, सूर्यभानु गुप्त, भवानीशंकर, शेरजंग गर्ग, चंद्रसेन विराट, गोपालदास 'नीरज', माहेश्वर तिवारी, डॉ. राही मासूम रजा, बशीर अहमद मयूख, नईम आदि ने हिन्दी काव्य को अपनी स्तरीय ग़ज़लों से समृद्ध किया है। हिन्दी गजल ने अपनी इस विकास–यात्रा में अनेक झंझावातों और विघ्न–बाधाओं को भी झेला है। बेबुनियाद विरोध, एकांगी कटु आलोचना, पक्षपातपूर्ण तंग नज़रिया आदि तूफानों से टकराते–जूझते हुए आज हिन्दी ग़ज़ल जिस मुकाम पर पहुँची है उसे देखते हुए लगता है कि आज हिन्दी गजल ने समकालीन अनेक कवियों की कलम पर ही नहीं, वरन् जनसाधारण से लेकर प्रबुद्ध पाठकों के दिलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया है। आज तो स्थिति यह है कि प्रतिष्ठित और नवोदित अनेक कवि गजल–रचना में प्रवृत्त हैं। हिन्दी के प्रतिष्ठित समकालीन

ग़ज़लकारों में कुछ महत्वपूर्ण सशक्त हस्ताक्षर इस प्रकार हैं – ज्ञानप्रकाश विवेक, बल्ली चीमा, राजेश रेड्डी, रोहिताश्व अस्थाना, शिवओम अंबर, चिरंजीत, बुद्धिसेन शर्मा, गिरिराजशरण अग्रवाल, अदम गोंडवी, निदा फाजली, नूर मुहम्मद नूर, एहतराम इस्लाम, रऊफ परवेज, विनोदकुमार डइके, सागर मीरजापुरी, रामगोपाल शुक्ल 'तपिश', सावित्री परमार, महाश्वेता चतुर्वेदी, रॉबिन शॉ पुण्य, ज़हीर कुरेशी, अशोक अंजुम, रामकुमार कृषक, हनुमंत नायडू आदि।

गुजरात की समकालीन हिन्दी गज़ल :

देश का पश्चिमांचल गुजरात भी हिन्दी की अन्याय साहित्य-विधाओं के साथ-साथ हिन्दी गज़ल-यात्रा में निरंतर गतिशील किंवा प्रगतिशील है। गुजरात में उर्दू और गुजराती गज़ल साहित्य पर्याप्त प्राचीन और समृद्ध है। अब इधर पिछले ढाई-तीन दशकों से हिन्दी गज़लें भी पर्याप्त मात्रा में लिखी गई हैं और निरंतर लिखी जा रही हैं। अहमदाबाद, सूरत, भड़ौच, बड़ौदा और पालनपुर तो जैसे गज़ल के गढ़ ही हैं। गुजरात के कतिपय प्रतिष्ठित गज़लकार और उनके चर्चित गजल-संग्रहों के नाम निम्नलिखित हैं –

(१) शेखादम आबूवाला – घिरते बादल : धुलते बादल

(२) वसीम मलिक – तपिश

(३) सुल्तान अहमद – (१) खामोशियों में बंद ज्वालामुखी
(२) नदी की चीख

(४) भगवानदास जैन – (१) जिंदा है आइना
(२) कटघरे में हूँ

(५)	भागवतप्रसाद मिश्र 'नियाज'	–	(१) जज़्बात
			(२) तलाश
			(३) आख़िरी दौर
(६)	दयाचंद जैन	–	दर्द का रिश्ता
(७)	ऋषिपाल धीमान	–	(१) शबनमी अहसास
			(२) हवा के काँधे पै
(८)	अश्विनीकुमार पाण्डेय	–	अहसास के साये तले
(९)	मरियम गज़ाला	–	क्षितिज की दहलीज़ पर
(१०)	सुरेश शर्मा कांत	–	सच कहना
(११)	अंजना संधीर	–	(१) बारिशों का मौसम
			(२) धूप, छाँव और आँगन
(१२)	लक्ष्मी पटेल 'शबनम'	–	कागज़ी रिश्ते
(१३)	डॉ. रशीद मीर	–	धूप के रंग
(१४)	जोज़फ अनवर	–	पगडंडियां
(१५)	नयन देसाई	–	धूप का साया
(१६)	रहमत अमरोहवी	–	रतजगे, इजाफा
(१७)	किशोर काबरा	–	चंदन हो गया हूँ

(१८) विजयकुमार तिवारी – फल खाए शजर

(१९) रमेशचंद्र शर्मा 'चंद्र' – लेकिन कब तक

(२०) नवनीत ठक्कर – चिलमनी यादों के महरूमी साये

(२१) प्रमोदशंकर मिश्र – चलो चलें, पढ़ें ग़ज़ल

उपर्युक्त प्रतिष्ठित ग़ज़लकारों के अतिरिक्त सर्व श्री डॉ. द्वारिकाप्रसाद साँचीहर, रामचेत वर्मा, चंद्रमोहन तिवारी, प्रमोदकुमार कुश 'तनहा', चंद्रपालसिंह यादव, बसंत ठाकुर, बसंत परिहार, प्रणव भारती, समरथमल जैन, सुलभ धंधुकिया आदि की मुख्तलिफ़ रंग, मिज़ाज और तेवर की गज़लें पश्चिमांचल (अहमदाबाद) से प्रकाशित विभिन्न सहयोगी काव्य-संकलनों में भी प्रकाशित हैं। यद्यपि गुजरात से हिन्दी का ऐसा कोई सहयोगी गज़ल-संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ जो समकालीन हिन्दी गज़ल-साहित्य के क्षेत्र में संपूर्ण गुजरात का प्रतिनिधित्व कर सके, तथापि कतिपय महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह निम्नलिखित हैं, जिनमें गुजरात के प्रतिनिधि कवियों की कविताएँ और गजलें संग्रहीत हैं :

१. समकालीन हिन्दी कविता : गुजरात (संपा., डॉ. अम्बाशंकर नागर)

२. नई धरती नया आकाश (संपा. डॉ. अम्बाशंकर नागर, डॉ. रामकुमार गुप्त)

३. पँखेरू पश्चिम के (संपा. डॉ. किशोर काबरा, रामचेत वर्मा)

४. बूँद-बूँद घट में (संपा. डॉ. किशोर काबरा)

५. पछुवाँ के हस्ताक्षर (संपा. डॉ. किशोर काबरा)

६. गवाक्ष (संपा. डॉ. किशोर काबरा)

७. राही अपनी मंजिल के (संपा. चंद्रपालसिंह यादव)

८. ध्वनिपथ के बटोही (संपा. चंद्रपालसिंह यादव)

९. धरा से गगन तक (संपा. विजयकुमार तिवारी)

१०. गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता (संपा. डॉ. अंबाशंकर नागर)

११. संवेदना के स्वर ('साहित्यलोक' प्रकाशन)

तदुपरांत लब्ध प्रतष्ठि कवि डॉ. किशोर काबरा रचित काव्य-संग्रह 'सारथि, मेरे रथ को लौटा ले', डॉ. दयाचंद जैन एवं इन पंक्तियों के लेखक के संयुक्त काव्य-संग्रह 'रोशनी की तलाश' तथा सुलभ धंधुकिया रचित काव्य-संग्रह 'चले आओ तुम' में रंगीन और संगीन दोनों प्रकार की ग़ज़लें प्राप्त होती हैं।

हिन्दी काव्याकाश के पश्चिमी क्षितिज पर शीघ्रता से उभरनेवाले ग़ज़लकारों में सर्वश्री रामगोपाल शुक्ल 'तपिश', चंद्रमोहन तिवारी, शिवा कनाटे, 'जूगनू' जयपुरी, डॉ. नवनीत ठक्कर, डॉ. हर्षदेव माधव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

गजल विधा और विशेषतः गुजरात की समकालीन ग़ज़लों को संपूर्ण भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से गुजरात की कुछ महत्वपूर्ण पत्रिकाओं के योगदान से इन्कार नहीं किया जा सकता। कुछ पत्रिकाओं के नाम इस प्रकार हैं –

१. गुर्जर राष्ट्रवीणा (संपा. श्री अरविंद जोशी, आचार्य रघुनाथ भट्ट)

२. भाषासेतु (संपा. डॉ. अम्बाशंकर नागर)

३. रैन बसेरा (संपा. श्री जयसिंह व्यथित)

४. साहित्य संहिता (संपा. डॉ. रजनीकान्त जोशी)

५. भव्यभारती (संपा. डॉ. विष्णु विराट)

६. आकार (संपा. श्री वसंतकुमार परिहार)

७. धबक (संपा. डॉ. रशीद मीर)

जहाँ तक पश्चिमांचल की हिन्दी गज़लों का सम्बन्ध है, इधर पिछले दिनों एक महत्वपूर्ण काम यह हुआ है कि हिन्दी के सुधी समीक्षक, प्रबुद्ध कवि, संवेदनशील गीतकार व लब्धप्रतिष्ठ हाईकुकार डॉ. भगवतशरण अग्रवाल एवं प्रतिष्ठित गजलकार डॉ. अब्बास अली ताई ने दक्षिण गुजरात के नये व पुराने गज़लकारों एवं उनकी गज़लों का एक गंभीर सर्वेक्षण किया और एक विशद भूमिका के साथ उन्हें ग्रंथस्थ किया। संपादक द्वय ने ग्रंथ में गजलों के बाबा आदमवली गुजराती (या वली औरंगाबादी) और उनके समकालीन अन्य अनेक सूफ़ी गज़लकारों की फ़ारसी एवं गूजरी जबान में कही गई गज़लों तथा समकालीन कई गज़लकारों की बहुरंगी गज़लों को संग्रहीत किया है। हिन्दी साहित्य अकादमी, गुजरात ने इस ग्रंथ को 'दक्षिण गुजरात की हिन्दी गज़ल-यात्रा' के नाम से प्रकाशित भी किया है। इस ग्रंथ में संग्रहीत गुजरात के कुछ सशक्त समकालीन हिन्दी गजलकारों के नाम हैं - सर्वश्री मंजर नवसारवी, डॉ. अब्बासअली ताई, 'अजनबी', राज नवसारवी, नयन देसाई, मुनीन्द्र आनंद, गजानन पटेल, जौहर राना, डॉ. रजनीकांत शाह, ऋषभ मेहता, रियाज़ ताई, गायत्री भट्ट, मस्त मँगेरा, बकुलेश देसाई, मनहर चौकसी, रमेश पटेल इत्यादि।

गुजरात की समकालीन हिन्दी गज़लों की विशेषताएँ :

पश्चिमांचल गुजरात के प्रत्येक समकालीन गज़लकार की गज़लों का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर पाना तो यहाँ संभव नहीं है, किन्तु समाहार रूप के गुजरात की हिन्दी गज़लों की कतिपय महत्वपूर्ण विशेषताओं को अवश्य रेखांकित किया जा सकता है।

कथ्यगत विशेषताएँ :

(१) **समसामयिक परिस्थितियों का चित्रण :** वर्तमान विषय एवं विद्रुप समाज-व्यवस्था, पूंजीवादी सभ्यता का शोषण-चक्र तथा कुत्सित राजनीति और स्वार्थांध राजनेताओं के भ्रष्टाचार व धर्म के क्षेत्र में व्याप्त संकीर्णता, कट्टरता एवं उच्छृंखलता पर समकालीन ग़ज़लकारों ने जमकर कशाघात किये हैं।

(२) **महानगरीय संत्रास :** शहरी जीवन की यांत्रिकता व हृदयहीनता, भरी भीड़ में आदमी के अकेलेपन और अजनबीपन, व्यक्ति के भीतर व्याप्त विष के कारण टूटते हुए पारिवारिक व भाईचारे के रिश्ते तथा स्वार्थन्ध महासत्ताओं की छल-छद्मपूर्म गुप्त मंत्रणाओं के प्रति भी हमारे ग़ज़लकारों ने गहरे क्षोम के साथ-साथ दाहक आक्रोश भी व्यक्त किया है।

(३) **प्रकृति-चित्रण एवं प्राकृतिक पर्यावरण की चिन्ता :** समकालीन ग़ज़लों में प्रकृति के सौम्य एवं रौद्र दोनों रूपों का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है, साथ ही तेजी से हो रहे गाँवो के शहरीकरण एवं परिणाम स्वरूप उत्पन्न जीवन की यांत्रिकता और मानवीय संवेदनहीनता तथा पर्यावरण में व्याप्त प्रदूषण के प्रति भी समकालीन गजलकारों ने दुश्चिन्ता व्यक्त की है।

(४) **प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण :** आधुनिक समस्या-संकुल युग में हुस्नो इश्क, शम्मा-परवाना, गुलो बुलबुल तथा मयखानों-पैमाने या रिंदोसाकी की बातें अब एकदम बेमानी लगती हैं। नये दौर का यह तकाजा भी है और कवियों का रचना-धर्म एवं दायित्व भी, कि अब वे देश-काल के मौजूदा हालात को मद्देनज़र रखकर ही अपनी ग़ज़लों की रचना करें, फिर भी हमारे कई ग़ज़लकार उर्दू ग़ज़लों की परंपरागत प्रणाली से प्रभावित

होकर प्रेम और सौंदर्य की चिरंतन अनुभूतियों को नकार नहीं पाते। लिहाजा गुजरात की समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में आज भी हमें अनेकत्र रूमानी स्वर सुनाई पड़ते हैं।

(५) **तग़ज्जुल का रंग :** यद्यपि पहले इश्को हुस्न के रंग को ही तगज्जुल माना जाता था, किन्तु जैसा कि पं. सुघोष भारद्वाज (ख़्बाब अकबराबादी) का मत है, अब तग़ज्जुल के तीन रंग हैं। इश्को हुस्न की बातें क़दीम तग़ज्जुल है, जबकि मौजूदा हालात और इन्सानी जिंदगी के पसमंजर में प्रस्तुत किया गया कोई नया खयाल जदीद तगज्जुल है और जगजीवन से सम्बन्धित गंभीर चिन्तन को फ़िक्र तग़ज्जुल कहते हैं। क़दीम और जदीद तग़ज्जुल के साथ-साथ गुजरात के कई ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में यह फ़िक्री तग़ज्जुल का रंग भी बखूबी निभाया है।

शिल्पगत विशेषताएँ :

(१) ग़ज़ल एक ऐसी काव्य-विद्या है जिसमें ग़ज़लकार के लिए लगातार मश्क और रियाज़ की ज़रूरत है। मुक़िम्मिल ग़ज़ल कहना यकीनन एक नायाब फ़न है। गजल रचना का अपना एक सुनिश्चित छंदशास्त्र है। इसके लिए मत्लों-मक्तों और रदीफ़-काफियों की जानकारी नाकाफी है। ग़ज़ल-लेखन के लिए कुछ मख्सूस बहरें (छंद) निर्धारित हैं। शेर के हर मिसरे (पंक्ति) का वज़न बावन तोला पाव रत्ती एकदम बराबर और दुरुस्त होना अनिवार्य है। हर बहर के लिए निश्चित अरकान (मात्राएँ) और उनकी गणना के नियम जानना भी अत्यावश्यक है।

(२) ग़ज़ल की भाषा न तो अतिशय संस्कृतनिष्ठ हो और न ही उर्दू बहुल। भाषा के मामले में कवि का तंग नजरिया आज के युग में ग़ज़ल गाई के लिए ही नहीं, वरन् कविता मात्र की रचना के लिए घातक है। भाषा की सरलता और सुबोधता बरकरार रखते हुए कथन में चुटीलापन और टटकापन पैदा कर देना ही ग़ज़लगोई का फन है। शब्दों का

सार्थक, साभिप्राय और समुचित प्रयोग भी गजल-रचना के लिए एक अनिवार्य शर्त है। अनावश्यक शब्दों के झमेले से भी बचना चाहिए।

(३) इल्मे अरूज (उर्दू शाइरी के छंदशास्त्र) के मर्मज्ञ आचार्यों ने जहाँ एक ओर ग़ज़ल की खूबियाँ (गुण) बताई हैं, वहीं दूसरी ओर उन्होंने उसके संभावित ऐबों (दोषों) को भी रेखांकित किया है। यथासंभव ग़ज़लकार को ऐसे दोषों से बचना लाज़िमी है। अन्यथा ग़ज़ल की गेयता और रवानी में ही नहीं, अपितु पठन में भी रुकावट उत्पन्न हो जाती हैं।

ग़ज़ल की इन तमाम बारीकियों के अपेक्षित ज्ञान के अभाव के कारण ही आज बहुत कम ऐसी ग़ज़लें पढ़ने को मिलती हैं। जिनमें ज़बान की सलासत और अंदाजेबयाँ की लताफत दिखाई पड़ती है। इसके विपरीत आज हिन्दी की अधिकांश ग़ज़लें बहर से खारिज़ और हिन्दी ग़ज़लकार ग़ज़लगोई की कला में विफल हैं। सच पूछिए तो ऐसी निरर्थक और निकृष्ट रचनाओं को ग़ज़ल कहना अदब और फन दोनों की तौहीन है। जिनका कथ्य साधारण और सस्ता हो तथा शिल्प ढुलमुल हो ऐसी रचनाओं को मात्रिक गजल कहकर भी साहित्य में प्रवेश नहीं किया जा सकता। हाँ, यह बात और है कि किसी उमदा, नवीन और बेमिसाल ख़याल और अर्थात उत्कृष्ट कथ्य की दृष्टि से हम शेर की किसी छोटी या मामूली-सी कमजोरी को नज़र अंदाज कर दें। वैसे, हिन्दी में दोहा, चौपाई, सवैया, हरिगीतिका और आल्हा या वीर जैसे हिन्दी के छंदों में भी ग़ज़ल रचना के प्रयोग हुए हैं जो स्वागतेय भी हैं, बशर्ते इनमें भी छंद का समुचित निर्वाह किया गया हो।

(४) यद्यपि मुहवरेदानी और लाक्षणिक प्रयोग उर्दू ग़ज़लों की उल्लेखनीय विशेषता है जो हमें समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में भी यदा-कदा देखने को मिलती है। समकालीन

हिन्दी गजलों में लाक्षणिक प्रयोगों के अतिरिक्त नूतन बिम्ब-योजना और अभिनव प्रतीक-विधान का भी सफल निर्वाह मिलता है। निस्संदेह यह एक शुभ और सुखद बात है।

कथ्यगत एवं शिल्पगत उपर्युक्त तमाम विशेषताएँ गुजरात की ही नहीं, अपितु समकालीन समस्त हिन्दी गजलों में कमोबेस मात्रा में देखने को मिलती हैं।

गुजरात की समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के कुछ प्रमुख हस्ताक्षर :

गुजरात की हिन्दी ग़ज़ल-यात्रा के कतिपय समकालीन प्रमुख हस्ताक्षरों की ग़ज़ल-साधना का सोद्धरण रसास्वादन भी यहाँ अपेक्षित और प्रासंगिक है।

श्री सुल्तान अहमद हिन्दी की जनवादी काव्य-धारा के प्रमुख हस्ताक्षर और पश्चिमांचल के सशक्त ग़ज़लकार हैं। आपकी ग़ज़लों में भी वहीं जनवादी स्वर और तेवर व्यक्त हुए हैं। कथ्य की दृष्टि से आपकी ग़ज़लें मर्मस्पर्शी और शिल्प की दृष्टि से एकदम निर्दोष हैं। मौजूदा व्यवस्था को बदल डालने का अटूट आत्मविश्वास और ग़ज़ल की खुद्दारी आपकी ग़ज़लों का प्रमुख स्वर है। मसलन,

राहबर के बिना ही जाएँगे, / रास्ता है तो पा ही जाएँगे। / तुम नहीं हम ज़मीं की तह में हैं, / जब भी उभरेंगे छा ही जाएँगे।

डॉ दयाचंद जैन की ग़ज़लों में हासोन्मुख मानव-मूल्यों एवं विषमतापूर्ण समाज-व्यवस्था के प्रति कवि-हृदय की दुश्चिंता अनेकत्र व्यक्त हुई है। प्रतिष्ठित कवि एवं प्रबुद्ध समीक्षक डॉ. रामकुमार गुप्त के मतानुसार 'दर्द का रिश्ता' डॉ. दयाचंद जैन की बहत्तर ग़ज़लों का एक ऐसा बेहतर दस्तावेज़ हैं जिसमें भुक्तभोगी ज़िंदगी का बेबाक़ आलेखन तो है ही, मौजूदा व्यवस्था-तंत्र के प्रति एक तीखा आक्रोश भी है। ग़ज़लकार का यह

विश्वास अभी जिंदा है कि विषवृक्ष की कोख से मानवीय संवेदना और एकता के बीज अवश्य अंकुरित होंगे। छोटी बहर की गजल में कवि की व्यंग्योक्ति दृष्टव्य है–

अंधियारे उजलाए कौन, / बुझते दीप जलाए कौन? / राजपथों पर टिकी नज़र, / जनपथ को अपनाए कौन?

श्री भागवतप्रसाद मिश्र 'नियाज' एक आस्थावादी कवि एवं सिद्धहस्त ग़ज़लकार हैं। हिन्दी–उर्दू दोनों भाषाओं पर आपका समानाधिकार है। आपकी ग़ज़लों में तग़ज़्जुल के कई रंग देखने को मिलते हैं। कहीं क़दीम तग़ज़्जुल है तो कहीं फ़िक्री तग़ज़्जुल है। ग़ज़ल के मिज़ाज की पूरी मुहाफ़िज़त करते हुए मिश्रजी ने दोनों प्रकार की ग़ज़लें कहीं हैं – व्यक्ति–निष्ठ और समाजनिष्ठ। ज़िंदगी के मुतल्लिक आपका चिंतन और कथन गौरतलब है–

क्यूं मुझ को बेकरार–सी लगती है ज़िंदगी, / उड़ती हुई बहार–सी लगती है ज़िंदगी। / अब तो 'नियाज' छोड़ दो आईना देखना, / आईने में दरार–सी लगती है ज़िंदगी।

डॉ. ऋषिपाल धीमान नवोदित ग़ज़लकारों में शीर्षस्थ कहे जा सकते हैं। ग़ज़ल–लेखन की अनवरत साधना से आपने सीमित समय में ही पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली है। धीमानजी ने एक ओर तो अपनी ग़ज़लों में जगजीवन से सम्बन्धित गूढ़ बातों को निहायत सादगी के साथ व्यक्त किया है, तग़ज़्जुल के विविध रंगों को बखूबी निभाया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक विसंगतियों को भी पुरअसर अंदाज में व्यक्त किया है। मसलन उनके ये शेर देखिए–

जब इक ग़रीब शख़्स का छप्पर उजड़ गया, / ज़ालिम हवा का ज़ोर भी मद्दम-सा पड़ गया। / देखा जो आदमी का सलूक आदमी के साथ, / मैं क्या बताऊँ शर्म से धरती में गड़ गया।

श्री अश्विनीकुमार पाण्डेय सफल गीतकार और दोहाकार के साथ-साथ सशक्त ग़ज़लकार भी हैं। नूतन भाव-भंगिमा, सटीक मुहावरों और सार्थक बिम्ब-प्रतीकों के कारण आपकी ग़ज़लें पर्याप्त प्रभावी बन पड़ी हैं। डॉ. अम्बाशंकर नागर के शब्दों में, 'पाण्डेयजी ने उर्दू ग़ज़ल के इश्के मजाज़ी इश्के हक़ीक़ी जैसे विषयों से आगे बढ़कर देश-प्रेम को अपनी ग़ज़लों का विषय बनाया है।' स्वतंत्र भारत के कर्णधारों से अभावग्रस्त अवाम के प्रतिनिधि के रूप में कवि का सीधा सवाल है –

मेरा पूर्ण स्वराज कहाँ है, / सपनों का सरताज कहाँ है? / हलवा-पूरी तुम्हें मुबारक, / मेरी रोटी-प्याज कहाँ है?

स्व. श्री सुरेश शर्मा कांत गुजरात के चर्चित गीतकार और ग़ज़लकार हैं। आपकी ग़ज़लों में एक संवेदनशील गीतकार की शब्द-माधुरी, अंतःसलिला की सी रवानी व भावुकता सर्वत्र लक्षित होती है। आपने अपने कथ्य को समाज के व्यापक परिदृश्य की अपेक्षा वैयक्तिक अनुभूतियों तक ही सीमित रखा है। ग्रामांचल के मासूम परिवेश को प्रदूषित महानगरों के विपरीत कितने प्रभावी ढंग से उभारा गया है। देखिए –

सरसों के पीले फूलों का मौसम आया नंगे पाँव,

जब से शहर गए हो बिलकुल भूल गए हो अपना गाँव।

तुमने क्या भिजवाई अब तक हम को शहरों की सौगात,

नई फसल का दाना-पानी तुम्हें भेजता मेरा गाँव।

डॉ. किशोर काबरा बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि एवं लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। आपने मात्रा और गुणवत्ता दोनों दृष्टियों से विपुल एवं उत्कृष्ट काव्य–सृजन किया है। आप मूलतः प्रबन्ध–चेतना के कवि हैं, गजल आपकी भावाभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम नहीं है, फिर भी आपने ग़ज़ल–रचना में भी अपनी लेखनी का उत्स सफलतापूर्वक प्रकट किया है। आपकी ग़ज़लों में कहीं प्रणय और सौंदर्य का लाक्षणिक चित्रण है तो कहीं आपका अनुभव प्रसूत प्रौढ़ आध्यात्मिक चिंतन व्यक्त हुआ है। आपकी एक चर्चित ग़ज़ल के दो शेर दृष्टव्य हैं–

जन्म से लेकर मरण तक दौड़ता है आदमी,

दौड़ते ही दौड़ते दम तोड़ता है आदमी।

सुबह पलना शाम अरथी और खटिया दोपहर,

तीन लकड़ी चार दिन में तोड़ता है आदमी।

श्री वसीम मलिक रान्देर सूरत के निवासी हैं। सीलम ज़बान में उमदा ख़यालात की पुरअसर पेशकश आपकी ग़ज़लों की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रसिद्ध गीतकार और ग़ज़लकार 'निरज' के शब्दों में, 'ग़ज़ल को मैं उर्दू भाषा और अदब की इबादतगाह मानता हूँ। वसीम ने यद्यपि अभी इस इबादतगाह की चौखट पर ही कदम रखा है, फिर भी उनके शब्दों में वह बुनावट और अर्थ में वह गंभीरता है जो एक मंजे हुए शायर में प्राप्त होती है। नये बिम्ब, नये प्रतीक, नये मुहावरे सभी कुछ उनकी ग़ज़लों में सहज ही उपलब्ध है।' बतौर बानगी वसीम जी की एक ग़ज़ल के ये दो शेर देखिए –

चाँद पर अब्र का साया नहीं देखा जाता, तेरा उतरा हुआ चेहरा नहीं देखा जाता।

वक़्त की धूप ने कुछ इस तरह झुलसाया है, ज़िंदगी अब तेरा चेहरा नहीं देखा जाता।

सुश्री मरियम ग़ज़ाला ने छंदमुक्त नई कविताओं और गज़लों दोनों में सफलतापूर्वक लिखा है। पारंपरिक तगज्जुल का रग प्रमुख होते हुए भी आपके कहने का निराला अंदाज आपकी गजलों को एक ताज़गी प्रदान करता है। आपकी गज़ल का मत्ला और एक शेर काबिले गौर है –

रेत का जिस्म लिये शहर में चलते क्यों हो,/और हर वक़्त हवाओं में बिखरते क्यों हो?

कोई नागिन तो नहीं हूँ कि तुम्हें डस लूँगी,/मेरे नज़दीक से चलने में भी डरते क्यों हो?

इन पंक्तियों का लेखक पिछले ढाई–तीन दशकों से केवल गज़ल–रचना में ही प्रवृत्त रहा। विद्रुप समाज में जो कुछ देखा, सुना और भोगा उसे मैंने अपनी गज़लों के माध्यम से बेलाग व्यक्त कर दिया। वर्तमान सभ्यता के दोगलेपन, सियासी चेहरों के मक्रोफ़रेब तथा कथित आत्मीय शुभचिन्तकों और ख़ैरख्वाहों की खुदगरजी, सत्ताधिकारियों की गिरगिट–सी रंगबदलू नीति, उनकी मौक़ा परस्ती, तथोक्त सभ्य व अभिजात लोगों के बड़बोलेपन और धर्म–राजनीति–समाज के ठेकेदारों के दो मुँहेपन खोखली और दांभिक धर्मनिरपेक्षता तथा महँगाई–बेरोजगारी के अभिशाप को ढोनेवाले इस देश के आम आदमी के दुख–दर्द को मैंने विशेषतः अपनी गज़लों का प्रतिपाद्य बनाया है। मेरी गज़ल–साधना के सम्बन्ध में हिन्दी जगत के दो मूर्धन्य कवियों के मत उद्धरणीय हैं–

(१) 'पश्चिमांचल के हिन्दी कवियों में केवल गज़ल काव्य–विधा के सहारे कलम का पूरा उत्स प्रकट करनेवाला प्रो. भगवानदास जैन में दुष्यंत की साफ़गोई, त्यागी की ऋजुता और भवानीशंकर की धारा मौजूद है।' – डॉ. किशोर काबरा

(२) 'डॉ. श्री अम्बाशंकर नागर ने ('कटघरे में हूँ' की) भूमिका में आपकी गज़लों को लेकर जो कहा है कि – यह सियासत अवाम और इन्क़िलाब का वक्ती दस्तावेज है' यह बिलकुल सार्थक है। इस मात्राओं की छोटी बहर में भी आपने खूब अधिकार से गजलें

कही हैं। वैसे तो अधिकांश गजलें कहन और तेवर की दृष्टि से उर्दू के करीब लगती हैं, तथापि हिन्दी का रस भी आपने खूब सावधानी से सँभाला है। बहूरों की शुद्धता ने इन्हे गेय बना दिया है।' – श्री चन्द्रसेन 'विराट'

उदाहरणार्थ कुछ शेर प्रस्तुत हैं –

जब भी परवाज़े परिंदा आसमानी देखिए, उसमें मेरे हौसलों की तर्जुमानी देखिए।

जो बुजुर्गों से सुनी थी औ' पढ़ी तारीख में, ज़ालिमों की आज भी वह हुक्मरानी देखिए।

सुश्री लक्ष्मी पटेल 'शबनम' विसनगर (गुजरात) की निवासी हैं। मूलतः गुजराती भाषी होने के बावजूद उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा पर आपका आश्चर्यजनक अधिकार है। शबनम जी की गज़लों में प्यार, तड़पन, मायूसी के साथ ही तूफान भी है और चिन्तन तथा दर्शन भी है। उनका कहना है कि 'मैंने सिर्फ दुनिया के साथ ही नहीं अपने नसीब के साथ भी संघर्ष किया है।' 'कागज़ी रिश्ते' की पहली गज़ल के ये अशआर देखिए –

अन्दाज़ जुदा सबसे हमारा है गज़ल में, हमने ग़मे दुनिया को सँवारा है गज़ल में।

गज़लों के गुलिस्ताँ में निखार आए न कैसे, जब दिल का लहू हमने उतारा है गज़ल में।

श्री प्रमोदशंकर मिश्र मूलतः गीत चेतना के सिद्धहस्त कवि हैं। आपने सरल, बोलचाल की लाक्षणिक भाषा–शैली में बड़ी सुन्दर गज़लें कही हैं। छोटी–बड़ी दोनों बहूरें आपको सिद्ध हैं। आपकी गज़लों में नये बिम्ब और प्रतीकों से सजे विविध प्रकृति–चित्र भी हैं और वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुभूतियों से अनुप्राणित मर्मस्पर्शी चित्र भी। कुछ शेर देखिए–

फ़िक्र हम करते रहे बेफ़िक्र होने के लिए, राह थी काँटों भरी मंज़िल गुलाबों का नगर।

कौन सपनों को सजाता कौन गाता लोरियाँ, सिसकियों में सो गए कितने यतीमों के नगर।

डॉ. **रशीद मीर** बड़ौदा के निवासी हैं। आप उर्दू, हिन्दी और गुजराती ग़ज़ल-साहित्यके बहुश्रुत विद्वान हैं। 'धबक' शीर्षक से आपके प्रमुख संपादकत्व में गुजराती-हिन्दी गजलों की एक मासिक पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित होती है जिसमें यदा-कदा ग़ज़ल की शास्त्रीय समीक्षाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं। 'धूप के रंग' आपका उल्लेखनीय हिन्दी ग़ज़ल-संग्रह है। यों तो आप सामाजिक सरोकारों के ग़ज़लकार हैं, किन्तु क्वचित् आपने तग़ज्जुल के रंग भी ख़ूब निभाए हैं। गजल में कहीं-कहीं आपके नवीन प्रयोग तो बड़े ही आकर्षक बन पड़े हैं। आपकी एक ग़ज़ल का मत्ला और एक शेर यहाँ प्रस्तुत है -

हमारा सर है उनका आस्ताँ है, मुहब्बत की यही बस दास्ताँ है।

जो बूढ़ा पेड़ा बरसों से खड़ा है, नई चिड़ियों का उससे राब्ता है।

श्री विजयकुमार तिवारी ने भी हर रंग और अंदाज़ में गज़लें कही हैं। सरल-सुबोध भाषा में चुभती हुई बात कह देने में आप बड़े दक्ष हैं। मसलन,

आ गया है वक़्त वह बस्ती जलाने आएगा, फिर वही दमकल लिए इसको बुझाने आएगा।

लूट, चोरी, ख़ून, खुलकर लोकशाही में करो, शान से शासन तुम्हें सर पर बिठाने आएगा।

श्री नयन देसाई गुजराती और हिन्दी दोनों भाषाओं पर समानाधिकार रखते हैं। लगता है, न तो आपको क़दीम तग़ज्जुल में कोई दिलचस्पी है और न ही आपको मख़मली अर्थात् रुमानी शाइरी रास आती है। गरज़ कि आप एकदम सामाजिक सरोकारों के सिद्धहस्त गजलकार हैं। हाँ, जदीदियत का रंग अवश्य ही आपकी ग़ज़लों में अनेकत्र उभरता हुआ देखा जा सकता है। आपकी दो मुख़्तलिफ़ ग़ज़लों के युगबोध से अनुप्राणित दो मत्ले देखिए-

नफ़रत का ये धब्बा गहरा मैं भी देखूँ तू भी देख, आज के दौर का बिगड़ा चेहरा मैं भी देखूँ तू भी देख।

निगाहें मेरी पढ़ लेती हैं ग़म की दास्ताँ कोई, सफ़र में जब भी मिलता है मुझे टूटा मकाँ कोई।

श्री **जौहर राना** का पूरा नाम है प्यारे साहब बापूसिंह राना। संभवतः आप किसी विषय विशेष के प्रतिबद्ध नहीं है। यही कारण है कि आपने हर रंग और मिज़ाज़ की ग़ज़लें कही हैं – कहीं इश्के हक़ीक़ी का रंग है, कहीं इश्के मज़ाज़ी का रंग है तो कहीं जदीदियत का रंग भी है। शेर कहने के फन में आपको ग़ज़ब की महारत हासिल है। आपकी एक ग़ज़ल का मत्ला और शेर देखिए–

काम अपना है हमेशा ही करामत करना, तपते सहराओं में फूलों की तिज़ारत करना।

वो फ़रिश्ता है जो हर ज़ुल्म को सह लेता है, वर्ना इन्सान की फ़ितरत है बग़ावत करना।

उपर्युक्त ग़ज़लकारों के अतिरिक्त गुजरात के और भी अनेक कवि हिन्दी ग़ज़ल–साहित्य को समृद्ध करने में अपना सारस्वत योगदान दे रहे हैं। जनाब **रहमत अमरोहवी** मूलतः उर्दू के शायर हैं। देवनागरी में लिप्यंतरित आपका प्रथम ग़ज़ल–संग्रह है–'इजाफ़ा'। इसके अलावा सद्यः प्रकाशित आपका हिन्दी गजल–संग्रह है 'रतजगे'। आपका एक मत्ला और एक सेर द्रष्टव्य है–

मुहब्बत ज़िंदगी की इक कड़ी है, मगर इस राह में मुश्किल बड़ी है।

ग़ज़ल और तंगदामानी का शिकवा, सलीका हो तो गुंजाइश बड़ी है।

'धूप, छाँव और आँगन' शीर्षक ग़ज़ल–संग्रह की कवयित्री **सुश्री अंजना संधीर** ने एक लम्बा अरसा अहमदाबाद, गुजरात में गुज़ारा है। इस समय वे न्यूयॉर्क में अपने परिवार के साथ रहती हैं और निरंतर काव्य–साधना में प्रवृत्त रहती हैं। आप मनोविज्ञान की अध्येता हैं। मानव–मन और उसमें भी नर–नारी के पारस्परिक सम्बन्धों की आप

विशेषज्ञ हैं। यही कारण है कि आपकी गजलों में युगीन परिस्थितियों और नारी–मन के अन्तर्द्वन्द्वों का अत्यंत मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है। कविवर नीरज के मतानुसार 'उनकी गजलों मे जो ताज़गी, जो नवीन बिम्ब–विधान, जो सहजता, जो संयोजन और भाषा–प्रवाह देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।' बतौर बानगी कुछ शेर आप भी देखिए–

यही कि हाथ हमारे भी हो गए जख़्मी, गुलों के शौक़ में काँटों पै उँगलियाँ रख दीं।

बताओ मरियम व सीता की बेटियों की क़सम, ये किसने आग के शोलों में लड़कियाँ रख दीं।

पुरानी पीढ़ी की नवोदित ग़ज़लकार के रूप में **आत्मप्रकाश** का नाम भी चर्चित हुआ है। 'परछाइयाँ' इस कवि की सहज, सरल एवं प्रभावोत्पादक ग़ज़लों का मनोमुग्धकारी संग्रह है। आस्था एवं तन्मयता की जुगलबंदी इन पंक्तियों में देखी जा सकती है–

आपको देखा, लगा कोई हमारा मिल गया,

यूं लगा – जैसे हमें जीवन दुबारा मिल गया।

आँच आ सकती नहीं उसको कभी संसार में,

राम के बस नाम का जिसको सहारा मिल गया।

'आकार' त्रैमासिक पत्रिका के संपादन और नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर कविवर वसंत परिहार की गजलें युगबोध के स्वरों से ओत–प्रोत हैं। श्री चंद्रपालसिंह यादव अपनी गजलों के माध्यम से मानव–मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए जूझते हुए दिखाई देते हैं। श्री वसत ठाकुर की गजलों में जन–जीवन के बड़े ही मर्मस्पर्शी दृश्य बिम्ब हैं। श्री जितेन्द्र चौहान की गज़लों में कसिी प्रतीक्षातुर भावुक हृदय की धड़कनें साफ़ सुनाई देती हैं। डॉ. नवनीत ठक्कर और डॉ. हर्षदेव माधव ने जिंदगी की ठोस और कटु सचाइयों को अपनी गजलों का प्रतिपाद्य बनाया है। डॉ. द्वारिकाप्रसाद साँचीहर एव श्री प्रमोदकुमार कुश 'तनहा' अपनी गजलों के माध्यम से

मानवीय अनुभूतियों को ज़िंदगी के आईने मे देखते, परखते और व्यक्त करते है। सुश्री डॉ. प्रणव भारती, श्री सुलभ धधुकिया एवं श्री चंद्रमोहन तिवारी की गजलों में मानव-मन की चिरंतन अनुभूतियों की प्रभावी अभिव्यक्ति है। डॉ. अब्बास अली ताई की गजलों में आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ युगीन मानव-जीवन की त्रासद स्थितियों को सफलतापूर्वक उजागर किया गया है।

संदर्भ

१. गुजरात का समकालीन हिन्दी कविता – संपा. डॉ. गोवर्द्धन शर्मा, भूमिका से

२. आदमी का आदमी होना, रमाकान्त शर्मा, पृ. १६

३. वही, पृ. १८

४. गुजरात का समकालीन हिन्दी कविता (अंबाशंकर नागर) – संपा. डॉ. गोवर्द्धन शर्मा

५. गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य – डॉ. भगवतशरण अग्रवाल

६. वही, प्रो. भगवानदास जैन, पृ. १९

७. वही, सुल्तान अहमद, पृ. २७

८. आलोक गुप्ता, वागर्थ अंक–७३, पृ. ५४

९. उत्तर महाभारत – किशोर काबरा, पृ. ७३

१०. गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, पृ. २७०

११. वही – २३८

१२. वही – मुकेश रावल

१३. वही – गोवर्द्धन शर्मा

१४ वही – पारूकान्त देसाई

१५. वही – शिवा कनाटे

१६. वही – सुषमा श्रीवास्तव

१७. वही – हूंदराज बलवाणी

१८. वही – कैलाशनाथ तिवारी

१९. वही – सलीम शेख

२०. वही – सेवाराम गुप्ता

२१. वही – भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज'

२२. वही – इंदिरा दीवान

२३. वही – भारती मेहता

२४. वही – मंजू महिमा

२५. अथ से इति – पुष्पलता शर्मा

२६. बांकी सफर के साथी – सुनंदा

२७. साँसों का सफर – सरिता पटेल

२८. रेत पर हस्ताक्षर – शशि अरोरा

२९. दीप वृक्ष – हरिन कुमार

३०. क्षितिज की दहलीज पर – मरियम गजाला

३१. मौन का आँगन – दिव्या रावल

३२ अनुभूति – प्रतिभा पुरोहित

३३ एक त्रिशंकु सिलसिला – प्रणव भारती

३४. निलांबर के निचे – शांति सेठ

३५. अपनी अपनी धूप – क्रांति येवतीकर

३६. जिन्दगी का सच – प्रमीला शुक्ल 'किरण'

३७. रजत रश्मि – राज आनंद

३८. साहिल के रेत पर

३९. जहाँ से आकाश शुरू होता है – उत्तरा

४०. पगडंडियाँ – जोजफ अनवर

४१. खुशबू कण – हरी सिंह चौधरी

४२. अंजुरी भर प्यास – कैलासनाथ तिवारी

४३. चले आओ तुम – सुलभ धंधोकिया

४४. इसी माहौल में – फूलचंद गुप्ता

४५. इतने दिनों तक – कुन्दन माली

४६. छंद छंद रागिनी – रामचेत वर्मा

४७. अशेष – गोपीचन्द चौबे

४८. जाने क्या बात कही ? – रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द'

४९. आदमी को तरासते हुए – प्रेम पाल शर्मा

५०. तस्बीह के दाने – अरूण सिंह बारहट

५१. स्याही भीगे पल – नवनीत ठक्कर

५२. अहसास के साये तले – अश्विन कुमार पाण्डेय

५३. कठपुतली का शोर – शेखर जैन

५४. कागज की नाव – अब्बास अली ताई

५५. जाती बार न मुख मोड़ो – सुरेश शर्मा

५६. शब्द बाँसुरी – आ. धरम विजय

५७. तृष्णा – प्रभात शर्मा

५८. दीवान–ए–शाकिर – शाकिर जुनागढ़ी

५९. शबनमी एहसास – ऋषिपाल धीमान

६०. समयकाल के अंबर पर – दिनेशचंद

६१. गुजरात के समकालीन हिन्दी कवि – संपा. गोवर्द्धन शर्मा, भूमिका से

६२. आदमी – किशोर काबरा

६३. फूल – रमाकांत शर्मा

६४. मेरा देश महान – निर्मला असनानी

६५. चाँद, चाँदनी और केकटस – डॉ अंबाशंकर नागर

६६. कब तक – कमल पुंजाणी

६७. जीवन – घनश्याम अग्रवाल

६८. तनी हुई प्रत्यंचा के बीच – अविनाश श्रीवास्तव

६९. तुफानों का दीप – भागवत प्रसाद 'नियाज'

७०. हाइकू संग्रह – भगवतशरण अग्रवाल

७१. परिताप के पाँच क्षण – किशोर काबरा

७२. प्रम्लोचा – अंबाशंकर नागर

७३. आकाशदीप – सुधा श्रीवास्तव

७४. साहित्य संहिता – डॉ. ममता

७५. युग चिंतन – जय सिंह व्यथित

७६. राष्ट्र वंदना – जय सिंह व्यथित

७७. भगत सिंह सर्ग – भागवतप्रसाद 'नियाज'

७८. डॉ. अंबाशंकर नागर

७९. समय साक्ष्य है – डॉ. विष्णु विराट

८०. धुँए के शहर में – डॉ. रामकुमार गुप्त

८१. धनुष भंग – किशोर काबरा

८२. नरो वा कुंज रो – किशोर काबरा

८३. मैं अनजान राहों का राही – द्वारका प्रसाद साँचीहर

८४. अनकहा दर्द – डॉ. रामकुमार गुप्त

८५. चंदन हो गया हूं – किशोर काबरा

८६. खुशी का खजाना – निर्मला असनानी

८७. गीत रजनीगंधा के – द्वारका प्रसाद साँचीहर

८८. क्या से क्या हो गया – डॉ. रामकुमार गुप्त

८९. चिंतन सतसई – शकुन्तला मेहता

९०. तलहटी के लोग – बसंत कुमार परिहार

९१. तू ही तू – घनश्याम अग्रवाल

९२. क्षणिकाएँ – नलिनी पुरोहित

९३. अनुभव सतसई – आत्म प्रकाश

९४. निष्कृति – कमलेश सिंह

९५. गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, पृ. २०३